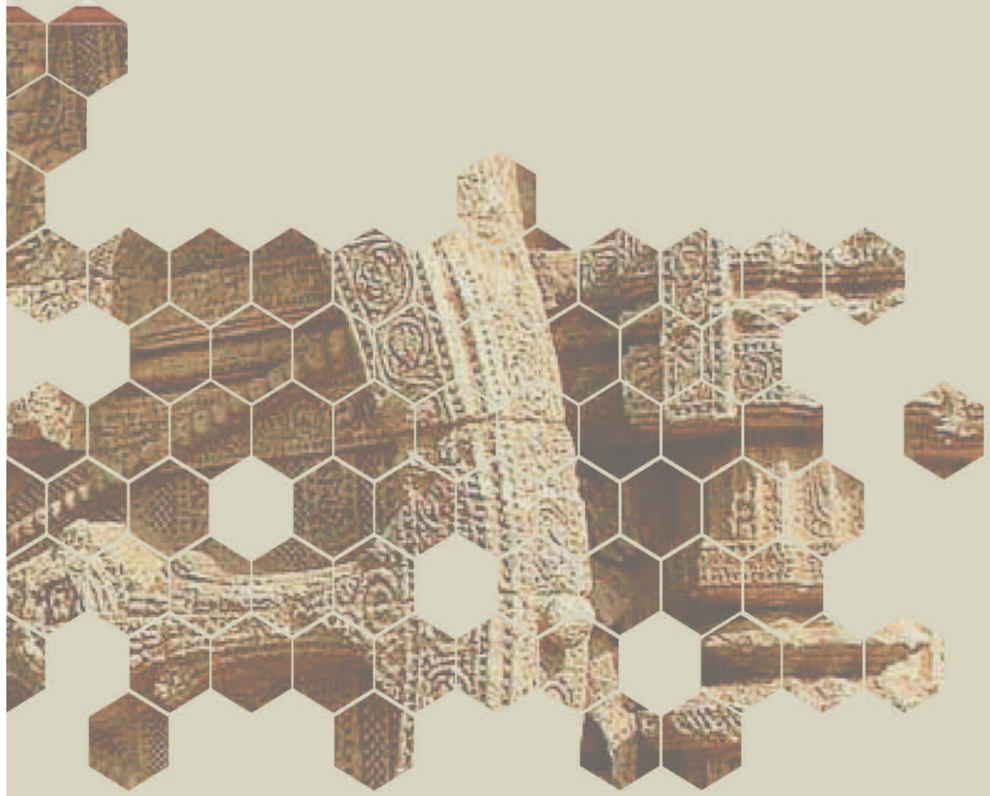

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

भारतीय एवं पा□चात्य काव्य शास्त्र - II

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र -II

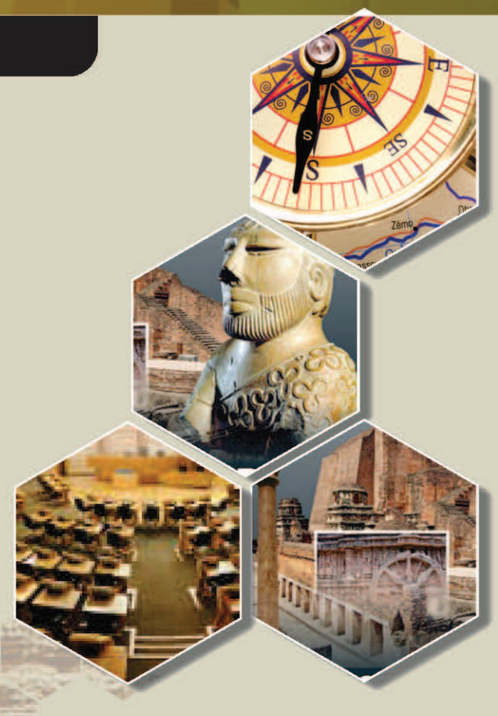

2MAHIN3

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MAHIN3

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र –II

2MAHIN3

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र –II

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Shahid Hussain, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Aanchal Shrivastava, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Mithalesh Singh Rajput, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Manju Bhatt, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Kalpana Abhishek Pathak, *Department of Hindi, Govt. College, Kotari, Mungeli, Chhattisgarh*

Dr. Radha Sharma, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Course Editor:

- **Dr. Sandhya Dubey, Associate Professor, *Dr. C.V. Raman* University Khandwa, M.P.**

Unit Written By:

1. Dr. Anchal Sriwastawa

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Rekha Dubey

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Dr. Shahid Husain

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई इकाई का नाम पृष्ट संख्या

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई - 1 पाश्चात्य विचारक (प्लेटो) 1

इकाई - 2 अरस्तु 15

इकाई - 3 लोंजाइनस 26

इकाई - 4 जॉन ड्राइडन 35

ब्लॉक -II

इकाई - 5 वर्ड्सवर्थ 45

इकाई - 6 सेम्युअल टेलर कॉलरिज 56

इकाई - 7 मैथ्यू आर्नल्ड 67

इकाई - 8 टी. एस. इलियट 78

ब्लॉक -III

इकाई - 9 आई. ए. रिचर्ड्स 89

इकाई - 10 स्वच्छंदतावाद 97

इकाई - 11 अभिव्यंजनावाद 108

इकाई - 12 मार्क्सवाद 119

ब्लॉक -IV

इकाई -13 अस्तित्ववाद 130

इकाई –14 पाश्चात्य विचारक (प्लेटो) शैली विज्ञान 143

इकाई - 15 विखण्डनवाद 154

इकाई - 16 उत्तर आधुनिकातावाद 167

ब्लॉक - I

इकाई -1

पाश्चात्य विचारक (प्लेटो)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पाश्चात्य शास्त्र का विकासक्रम

1.4 काव्य सिद्धांत

1.5 सत्काव्य के गुण

1.6 सार संक्षेप

1.7 मुख्य शब्द

1.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ सूची

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

पाश्चात्य दर्शन और साहित्यिक आलोचना में प्लेटो का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्लेटो न केवल महान दार्शनिक थे, बल्कि उनके विचारों ने साहित्य, कला और समाज के प्रति दृष्टिकोण को भी गहरा प्रभावित किया। उनका यह मानना था कि कला और साहित्य, विशेषकर काव्य, केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि समाज और व्यक्तित्व के निर्माण में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। प्लेटो का साहित्यिक आलोचना में विशेष योगदान इस बात में निहित है कि उन्होंने कविता और कला के प्रभाव को नैतिक और सामाजिक संदर्भों में मूल्यांकन किया।

प्लेटो के अनुसार, कला और साहित्य सत्य की खोज में सहायक नहीं होते, बल्कि भ्रम और माया की ओर प्रवृत्त करते हैं। उन्होंने कविता को दूसरी या तृतीय श्रेणी का ज्ञान बताया, जो वास्तविकता का प्रतिरूप नहीं बल्कि उसके परछाई के रूप

में प्रस्तुत होता है। उनके इस दृष्टिकोण ने साहित्यिक आलोचना में एक नई दिशा दी, जिसने भविष्य में कई अन्य विचारकों को प्रभावित किया।

इस इकाई में हम प्लेटो के साहित्यिक आलोचना के सिद्धांतों का विश्लेषण करेंगे, उनके विचारों को समझने की कोशिश करेंगे और देखेंगे कि कैसे उनके विचार आज भी साहित्य और कला की समीक्षा में प्रासंगिक हैं। प्लेटो के दर्शन को समझना, न केवल उनके समय बल्कि आज के साहित्यिक परिप्रेक्ष्य को भी समझने में सहायक है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- प्लेटो के दर्शन और उनके साहित्यिक आलोचना के सिद्धांतों को।
- प्लेटो के कला और साहित्य के प्रति दृष्टिकोण का विश्लेषण करेंगे।
- प्लेटो द्वारा साहित्य को 'प्रतिरूप' और 'परछाई' के रूप में प्रस्तुत करने के पीछे के तर्कों को समझेंगे।
- प्लेटो के साहित्यिक आलोचना के सिद्धांतों का समाज और व्यक्ति पर प्रभाव का मूल्यांकन करेंगे
- प्लेटो के विचारों को आधुनिक साहित्यिक आलोचना से जोड़ने की क्षमता को प्राप्त करेंगे।

1.3 पाश्चात्य शास्त्र का विकासक्रम

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परंपरा का मूल यूनान में माना जाता है। सुकरात के शिष्य प्लेटो को प्रथम पाश्चात्य समीक्षक होने का गौरव प्राप्त है। माना जाता है कि प्लेटो के समय का समाज पतित एवं विकृत दशा में था। वे अपने समाज का उत्थान करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने साहित्य और ज्ञान की हर विधा को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से परखा। तत्कालीन रचे जा रहे साहित्य को, काव्य को उन्होंने हीन दृष्टि से देखते हुए उस पर आरोप लगाए। हालांकि प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने इन आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। अरस्तू की विचारधारा साहित्य के प्रति स्वस्थ और सकारात्मक थी। उन्होंने काव्य-रचना

विषयक सिद्धांतों की समीक्षा की, व्याख्या की और काव्य प्रकृति के वास्तविक रूप को समझने पर बल दिया। प्लेटो ने कहा था कि साहित्य को समाजोपयोगी होना चाहिए, अरस्तू ने उसके आनंद तत्व को प्रधानता दी। कृति की कलात्मकता और गठन पर बल दिया। अरस्तू के पश्चात यूनान में कुछ काल तक अलंकारशास्त्र और वक्तृत्व कला पर ही रचनाएं होती रहीं। साहित्य-समीक्षा में अवरोध उत्पन्न हुआ। अरस्तू के बाद लोंजाइनस प्रसिद्ध समीक्षक हुए जिनका मत था कि पाठक या श्रोता को तन्मय कर देना ही काव्य का लक्ष्य है। स्कॉट जेम्स ने इन्हें प्रथम स्वच्छंदतावादी या सौंदर्यवादी समीक्षक कहा क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम कवि, काव्य और भावक तीनों के गुणों की विवेचना की। उपरोक्त तीनों यूनानी समीक्षकों का स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

सन् 1400 ई-1660 ई. तक का काल अंग्रेजी साहित्य में पुनर्जागरण का काल माना गया है। इस काल में कुछ मानववादी, कुछ बुद्धिवादी समीक्षक हुए। कुछ समीक्षकों जैसे विवेस और इरास्मस ने प्राचीन के अंधानुकरण का विरोध किया, वे यांत्रिक अनुकरण के विरोधी थे। कुछ नवीन किए जाने के पक्षपाती थे। अतः इन दोनों ने 'वस्तु' और 'शैली को महत्व देते हुए समीक्षा प्रस्तुत की। 1570 ई. के बाद साहित्य की प्रकृति तथा कला की गंभीर व्याख्या की गई। सुधारवादियों ने साहित्य पर अनैतिकता का आरोप लगाया तो रिचर्ड विलियम्स जैसे समीक्षकों ने इसका तर्क सम्मत उत्तर देते हुए काव्य को अंतःशक्ति से उत्पन्न, गुण संपन्न एवं आनंदप्रद बताया। इस युग के एक अन्य समीक्षक पटेन्हम ने "दैवीय प्रेरणा, लोक जीवन के अनुभव और प्राकृतिक शक्ति तीनों को काव्य का हेतु माना और कल्पना को काव्य निर्माण के लिए आवश्यक कहा।" पटेन्हम की मान्यता थी कि कवि को औचित्य का ध्यान रखना चाहिए तथा अलंकरण-विधान छिपे रूप में करना चाहिए। बेन जॉनसन ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'डिस्कवरीज' में स्वस्थ विचार और उपयुक्त शैली को काव्य के लिए आवश्यक माना। प्रतिभा, अभ्यास, व्यापक अध्ययन एवं महान कवियों के अनुकरण को वे काव्य का हेतु मानते थे। वे प्रथम समीक्षक थे जिन्होंने व्यावहारिक समीक्षा में व्यक्तिगत दृष्टिकोण उपस्थित किया।

16 वीं शताब्दी के अंत में उपरोक्त समीक्षकों के विचारों को दृष्टिगत रखते हुए साहित्यिक नियम बनने लगे। बोयलो ने अपनी कृति 'आर्ट पोएटिक' में काव्य के उद्देश्य, शैली, प्रकृति एवं रूपों के विषय में नियम निर्धारित किए। माना जाता है कि इन नियमों के पालन में बंधी हुई लीक के बीच साहित्य की आत्मा घुटने लगी और प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदता के लिए विद्रोह भी दृष्टिगोचर होने लगा। सैंट एव्रमो ने नियम और बुद्धि के सीमित प्रयोग की बात कही तथा साहित्य के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्ति उपयोगिता की दृष्टि से परखा। तत्कालीन रचे जा रहे साहित्य को, काव्य को उन्होंने हीन दृष्टि से देखते हुए उस पर आरोप लगाए। हालांकि प्लेटों के शिष्य अरस्तू ने इन आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। अरस्तू की विचारधारा साहित्य के प्रति स्वस्थ और सकारात्मक थी। उन्होंने काव्य रचना विषयक सिद्धांतों की समीक्षा की, व्याख्या की और काव्य प्रकृति के वास्तविक रूप को समझने पर बल दिया। प्लेटो ने कहा था कि साहित्य को समाजोपयोगी होना चाहिए, अरस्तू ने उसके आनंद तत्व को प्रधानता दी। कृति की कलात्मकता और गठन पर बल दिया। अरस्तू के पश्चात यूनान में कुछ काल तक अलंकारशास्त्र और वक्तृत्व कला पर ही रचनाएं होती रहीं। साहित्य समीक्षा में अवरोध उत्पन्न हुआ। अरस्तू के बाद लॉजाइनस प्रसिद्ध समीक्षक हुए जिनका मत था कि पाठक या श्रोता को तन्मय कर देना ही काव्य का लक्ष्य है। स्कॉट जेम्स ने इन्हें प्रथम स्वच्छंदतावादी या सौंदर्यवादी समीक्षक कहा क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम कवि, काव्य और भावक तीनों के गुणों की विवेचना की। उपरोक्त तीनों यूनानी समीक्षकों का स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

सन् 1400 ई-1660 ई. तक का काल अंग्रेजी साहित्य में पुनर्जागरण का काल माना गया है। इस काल में कुछ मानववादी, कुछ बुद्धिवादी समीक्षक हुए। कुछ समीक्षकों जैसे विवेस और इरास्मस ने प्राचीन के अंधानुकरण का विरोध किया, वे यांत्रिक अनुकरण के विरोधी थे। कुछ नवीन किए जाने के पक्षपाती थे। अतः इन दोनों ने 'वस्तु' और 'शैली को महत्व देते हुए समीक्षा प्रस्तुत की। 1570 ई. के बाद साहित्य की प्रकृति तथा कला की गंभीर व्याख्या की गई। सुधारवादियों ने साहित्य पर अनैतिकता का आरोप लगाया तो रिचर्ड विलियम्स जैसे समीक्षकों

ने इसका तर्क सम्मत उत्तर देते हुए काव्य को अंतः शक्ति से उत्पन्न, गुण संपन्न एवं आनंदप्रद बताया। इस युग के एक अन्य समीक्षक पटेन्हम ने "दैवीय प्रेरणा, लोक जीवन के अनुभव और प्राकृतिक शक्ति तीनों को काव्य का हेतु माना और कल्पना को काव्य निर्माण के लिए आवश्यक कहा।" पटेन्हम की मान्यता थी कि कवि को औचित्य का ध्यान रखना चाहिए तथा अलंकरण-विधान छिपे रूप में करना चाहिए। बेन जॉनसन ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'डिस्कवरीज' में स्वस्थ विचार और उपयुक्त शैली को काव्य के लिए आवश्यक माना। प्रतिभा, अभ्यास, व्यापक अध्ययन एवं महान कवियों के अनुकरण को वे काव्य का हेतु मानते थे। वे प्रथम समीक्षक थे जिन्होंने व्यावहारिक समीक्षा में व्यक्तिगत दृष्टिकोण उपस्थित किया।

16 वीं शताब्दी के अंत में उपरोक्त समीक्षकों के विचारों को दृष्टिगत रखते हुए साहित्यिक नियम बनने लगे। बोयलो ने अपनी कृति 'आर्ट पोएटिक' में काव्य के उद्देश्य. शैली, प्रकृति एवं रूपों के विषय में नियम निर्धारित किए। माना जाता है कि इन नियमों के पालन में बंधी हुई लीक के बीच साहित्य की आत्मा घुटने लगी और प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदता के लिए विद्रोह भी दृष्टिगोचर होने लगा। सैंट एनमो ने नियम और बुद्धि के सीमित प्रयोग की बात कही तथा साहित्य के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्ति पर बल दिया। इसके अतिरिक्त त्रासदी में अतिप्राकृत तत्वों का विरोध करते हुए उन्होंने साहित्य को युग की पृष्ठभूमि में देखने की प्रेरणा दी।

17 वीं शताब्दी में नवक्लासिकवादी और स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों में संघर्ष बना रहा। 18 वीं शताब्दी के आरंभ में साहित्य की सुगमता, सरलता एवं स्पष्टता पर बल देने के साथ प्राचीन साहित्य पर चिंतन एवं स्वच्छंद प्रकृति के विकास पर गतिविधियां चलती रहीं। बुद्धि को कल्पना से अधिक महत्व देने के साथ कल्पना के सौंदर्य और गौरव पर व्याख्याएं प्रस्तुत हुई। शैली पर तर्क-वितर्क चलते रहे। पोप एवं डॉ. जानसन जैसे समीक्षकों ने प्राचीन साहित्य को नई दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए कहा कि साहित्य का परीक्षण सार्वभौम प्रकृति के आधार पर होना चाहिए। यह बुद्धि-विवेक का युग था।

1798 ई. में वर्डस्वर्थ के 'लिरिकल बैलेड्स' के प्रकाशन के साथ ही अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद ने पांव जमा लिए। फ्रांस की राज्यक्रांति, रूसो, बोल्तेयर और गेटे की दृष्टि और रचनाओं ने इस प्रवृत्ति को प्रबल बनाया। कॉलरिज, शैली और कीट्स ने इसमें सहयोग दिया। काव्य में आनंद मूल्य को महत्वपूर्ण माना जाने लगा। कल्पना, सौंदर्य, रहस्य की छायाएं काव्य में दिखाई देने लगीं।

19 वीं शताब्दी में राजनैतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, मनोवैज्ञानिक आदि क्रांतियों ने साहित्य को प्रभावित किया और साहित्य जीवन के निकट आ गया। जीवन की तरह ऊबड़-खाबड़ गद्य की प्रधानता हो गई। इस युग में कथ्य पर ध्यान देने वाले कार्लाइल, रस्किन, टॉलस्टाय जैसे नीतिवादी समीक्षकों का मत था कि कला एक दिव्य शक्ति है और कुरूपता को कला द्वारा ही दूर किया जा सकता है। इस सदी के अंत में 'कला कला के लिए' का आंदोलन चल पड़ा। वाल्टर पेटर ने इस मत को प्रतिष्ठित करते हुए नीतिवादिता से दूर रहकर सूक्ष्म सौंदर्य की आराधाना की बात कही। जबकि स्विनबर्न ने 1866 ई. में 'Poems and Ballads' लिखकर विक्टोरियन युग की नैतिकता को प्रबल चुनौती देते हुए 'कला कला के लिए' का विरोध किया।

20 वीं शताब्दी का आरंभ अंग्रेजी समाज एवं साहित्य के लिए बेहद अव्यवस्था का समय था। कुंठा, निराशा, अनास्था, अमानवीयता आदि प्रवृत्तियों के बीच आलोचना का आरंभ हुआ। इरविंग बेबिट एवं ह्यूम ने नीति एवं आचार पर बल देते हुए स्वच्छंदतावादी काव्य में बिंबवाद का विरोध किया। आत्मवादी इटालियन दार्शनिक क्रोचे ने भौतिकवाद का विरोध किया और कहा कि कलात्मक सृजन सहजानुभूति की क्रिया है। आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक आलोचना का दौर आरंभ हुआ। आई.ए. रिचर्ड्स, टी.एस. इलियट, फ्रायड और मार्क्स जैसे समीक्षक एवं विचारक इस युग में हुए। मार्क्स की समाजवादी आलोचना और फ्रायड के काम-संबंधी विवेचन (जिसमें वे जीवन में काम को मूल-वृत्ति तथा साहित्य को काम-कुंठाओं की अभिव्यक्ति मानते हैं), ने आलोचना पर पर्याप्त प्रभाव डाला। अधुनातन समीक्षाओं का दौर नई-दृष्टियों से संपन्न होता हुआ निरंतर जारी है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. प्लेटो ने साहित्य को समाजोपयोगी होने का समर्थन किया था। (सत्य/असत्य)
2. अरस्तू ने काव्य की कलात्मकता और गठन पर अधिक बल दिया। (सत्य/असत्य)
3. सैंट एव्रमो ने साहित्य के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया और नियमों के कठोर पालन की बात की। (सत्य/असत्य)
4. 18वीं शताब्दी में साहित्य को केवल कल्पना और सौंदर्य के आधार पर ही परखा गया। (सत्य/असत्य)

1.4 काव्य सिद्धांत

प्लेटो दार्शनिक होते हुए भी सहदय कवि थे आलोचक नहीं, इसलिए उनकी आलोचनाएं किसी एक कृति में संग्रहीत नहीं मिलतीं। प्लेटो से पूर्व काव्य समीक्षा संबंधी विचार स्फुट रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे होमर का मत है कि 'काव्य का लक्ष्य आनंद देना है और कवि यह आनंद कलात्मक भ्रम द्वारा उत्पन्न करता है।' हेसिओड मानते हैं कि 'काव्य का उद्देश्य शिक्षा देना या दैवी संदेश देना है।' ग्रीस की आदिम पौराणिक कथाएं काव्य का प्रयोजन प्राणियों को सभ्य बनाना मानती हैं। गार्जियस ने भाषा शक्ति या शब्द की शक्ति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि निर्बल और भावों को वहन करने में असमर्थ भाषा कवि के अभीष्ट को व्यंजित नहीं कर पाती और न ही पाठकों को प्रभावित कर सकती है। उनके अनुसार 'शब्द सशक्त शासक है।' प्लेटो ने अपनी पूर्व परंपरा के काव्य का अध्ययन किया और यत्र-तत्र उनका उल्लेख भी किया। होमर के प्रति उनके मन में आदर था। ऐसा होते हुए भी उन्होंने तत्कालीन काव्य और कवियों की निंदा की क्योंकि तत्कालीन समाज विकृत और पतनशील था। साहित्य जो समाज को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक सशक्त माध्यम है वह उस योग्यता से वंचित था जो समाज का उत्थान, कर सकती थी। इसलिए प्लेटो ने काव्य या कवि की नहीं बल्कि देखा जाए तो जिस प्रवृत्ति के अधीन होकर कवि जिस तरह का काव्य लिख रहे थे उस प्रवृत्ति की निंदा की।

प्लेटो दार्शनिक होने के साथ सत्य का उपासक और तर्क का पक्षपाती था। उसने दर्शन की वेदी पर कवि-हृदय की बलि चढ़ाकर सत्य की रक्षा की। प्लेटो ने लिखा था कि 'कविता और दर्शन का झगड़ा पुराना है।' वह कविता को स्वतः प्रसूत भावोद्‌गार मानता है। कोई कवि गंभीर मननोपरांत काव्य रचना नहीं करता बल्कि अन्तः प्रेरणा से प्रेरित होकर लिखता है। इसलिए इस तरह के स्वतः प्रसूत भावोद्‌गारों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए वह कवि और उसके सहज कवि कर्म को सत्य से भ्रमित करने वाला मानते हैं। कविता मूलतः मनोवेगों पर आधारित होती है जबकि दर्शन गंभीर तर्क और पर्यालोचन पर आधारित होता है। इसलिए कविता दर्शन का स्थान नहीं ले सकती, न ही राष्ट्र के उत्थान में सहायक हो सकती है। प्लेटो की इस मान्यता का कारण उसका आदर्शवादी सुधारक होना था। वह चाहता था उसके देश का हर नागरिक आदर्श नागरिक बने। उसके मतानुसार, 'मनुष्य के दो धर्म हैं बतौर विशिष्ट व्यक्ति के उसे सत्य की प्राप्ति में संलग्न होना चाहिए और बतौर समाज के सदस्य के उसे सदाचारी होना चाहिए। प्लेटो ने अपने कलागत सिद्‌धांत दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए। उसके विचारशील मस्तिष्क को यह बात चुनौती लगती थी कि कवि चिरंतन सत्य के शोधक और प्रतिष्ठाता होते हैं। वह अंधी अनुयायिता को नापसंद करता था। प्लेटो कविता को उसी सीमा तक ग्राह्य मानता था जिस सीमा तक वह मानव, समाज एवं देश के उत्थान के लिए हितकारी हो। इसलिए प्लेटो नहीं चाहता था कि कविता में देवताओं को कुटिल, पापी, षड्‌यंत्रकारी, लालची, व्यभिचारी आदि दिखाया जाए जैसा कि तुलसीदास ने लिखा 'ऊंच निवास नीच करतूती'। इससे पाठक पर बुरा प्रभाव पड़ने का भय था। वे दर्शन को नवीन युग के लिए हितकारी मानते थे।

प्लेटो को केवल बौद्‌धिक आनंद स्वीकार था, ऐंद्रिय आनंद नहीं। अतः इंद्रियों से संबंधित काव्यजन्य आनंद उसके दर्शन से मेल न खाने के कारण उसके लिए अमान्य था। प्लेटो से पूर्व कवि को उपदेशक, संत और मार्गदर्शक समझा जाता था। होमर के संबंध में लोगों का मत था कि 'वह महान कवि होने के कारण अच्छा शिक्षक है। वह सर्व कला विशेषज्ञ है। मानव की अच्छाइयों-बुराइयों को जानता है। वह दैवीय तत्वों से अभिज्ञ है। अतः उसके अनुरूप अपना जीवन

ढालने के लिए उसकी उपयोगी शिक्षा को बार-बार पढ़ना चाहिए। प्लेटो इससे असहमत था और जनता के दृष्टिकोण को स्वस्थ नहीं मानता था।'

प्लेटो का मत था कि 'उसके समय की कविता मनोरंजन के लिए लिखी जाती थी और ग्रीक लोगों के अस्वस्थ मनोवेगों को उभारती थी। प्लेटो के अनुसार 'सत्य वह है जिसमें समाज और व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को बल मिले। इसके विपरीत जो कुछ भी हो उसे वह असत्य मानते हुए काव्य को भी इसी कसौटी पर कसकर देखता था। इस 'सत्य' के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए उसने उदाहरण दिया कि "जब कभी कई प्राणियों या वस्तुओं की एक सामान्य संज्ञा होती है, तो हम कल्पना कर लेते हैं कि उनका एक सामान्य आदर्श (Idea) या रूप (Form) होगा।" प्लेटो कहता है कि ईश्वर ऐसे ही सामान्य आदर्श का कर्ता है, न कि विशेष आदर्श का। यही सामान्य आदर्श सत्य है। संपूर्ण विश्व में व्याप्त सौंदर्य, शिवत्व, सत्य एवं आनंद का आदर्श एक है। वे सामान्य सत्य को ही सच्चा सत्य मानते हैं। उसकी दृष्टि में विशिष्ट सत्य विश्वजनीन (Universal) सत्य की छाया मात्र है। इसके लिए उन्होंने 'पलंग' का उदाहरण दिया 'ईश्वर केवल एक पलंग की रचना करता है, वह पलंग आदर्श होता है। शेष जितने पलंग होते हैं वे सब आदर्श पलंग जिसमें मात्र सत्य निवास करता है, की नकल होते हैं इसलिए असत्य हैं।'

प्लेटो का काव्य-संबंधी मत यह भी था कि "जीवन में जो कुछ उदात्त और वांछनीय है, काव्य में उसके विपरीत है अर्थात काव्य अनुदात्त और अवांछनीय है।" उदाहरण के तौर पर होमर के काव्य में नायक को रोते और छाती पीटते दिखाया गया है। जीवन में हम इसे अवांछनीय मानते हैं और हमारा विवेक ऐसा करने की सम्मति नहीं देता लेकिन काव्य में यह सब पढ़कर हमें आनंद आता है। इसलिए उसने कहा 'काव्य का सत्य वास्तविक सत्य नहीं होता।' प्लेटो की दृष्टि में कविता का सत्य वास्तविक सत्य इसलिए नहीं था क्योंकि वह कविता को अज्ञान से उत्पन्न मानता था। उसका मत था कि कवि जिस वस्तु का अनुकरण करता है उसकी मूल प्रकृति से परिचित नहीं होता जैसे पलंग का चित्र बनाने वाला चित्रकार उस मूल पलंग की प्रकृति से न तो पूर्ण परिचित होता है,

न उसका स्वरूप ही सच्चाई से अंकित कर पाता है। इसलिए उसका अनुकरण अज्ञान-जन्य होता है और उसका सत्य भ्रामक ।

प्लेटो का मत था कि कवि यश और कीर्ति पाने के लिए पाठकों या श्रोताओं की वासनाओं को उत्तेजित कर लोकप्रियता प्राप्त करता है। वह आवेगपूर्ण और उन्मादग्रस्त प्रकृति का ही चित्रण करता है क्योंकि यह अनुकरण सरल और पाठकों को प्रिय होता है। अर्थात कवि का प्रयोजन आत्मा के विवेकपूर्ण अंश को प्रसन्न करना नहीं बल्कि पाठक को प्रसन्न करना है। ट्रेजिडी के संबंध में प्लेटो का कथन है कि "ट्रेजडी का कवि हमारे विवेक को नष्ट कर हमारी वासनाओं को जाग्रत करता है, उनका पोषण करता है और उन्हें पुष्ट करता है।" काव्य के इसी हानिकारक प्रभाव के कारण वे काव्य सत्य को वास्तविक सत्य नहीं मानते। प्लेटो को जनता की रुचि पर विश्वास नहीं था। उन्होंने लिखा "मनोरंजन का अर्थ हर किसी का मनोरंजन नहीं है, सर्वोत्कृष्ट संगीत वह है जो सर्वोच्च शिक्षित व्यक्तियों को प्रसन्नता प्रदान करे और विशेषतः उस एक व्यक्ति को जो शिक्षा तथा गुणों में सर्वप्रमुख हो। यही बात साहित्य और काव्य पर भी लागू होती थी। प्लेटो के लिए 'साहित्य में आनंद प्रमुख तत्व नहीं था। उसके लिए ऐंद्रियता से, कालुष्य से रहित बुद्धि का आनंद ही एकमात्र ग्राह्य आनंद था।'

1.5 सत्काव्य के गुण

प्लेटो के लिए न्याय का सिद्धांत प्रमुख था। इस एक सिद्धांत का पालन करने वाले काव्य की सरलता पर वह बल देता था। काव्य में उद्देश्य की एकता, अन्विति तथा लयात्मकता को महत्व देता था। उसकी निश्चित धारणा थी कि काव्य धार्मिक तथा नैतिक होना चाहिए। जिसमें देवताओं तथा वीरों के सद्गुणों जैसे सच्चाई, शील, दृढ़ता आदि को ही चित्रित किया जाए ताकि इससे समाज का उत्थान हो। इस दृष्टि से उसने साहित्य के दो भेद किए सत्साहित्य और असत्साहित्य।

दार्शनिक होने के कारण प्लेटो ने सदैव तर्क और बौद्धिकता को बल दिया तथा कल्पना तत्व का तिरस्कार किया। उसका मानना था कि कल्पना के द्वारा कवि

झूठे बिंब और चित्र प्रस्तुत करता है जिससे बाह्य तृप्ति तो मिल सकती है पर आत्मा परिष्कृत एवं उदात्त नहीं हो सकती।

प्लेटो ने कला को कला की दृष्टि से न देखकर समाज कल्याण की दृष्टि से परखा। अतः कला में 'सुन्दर' से अधिक 'शिव' पर बल दिया जो सौंदर्यशास्त्री की दृष्टि नहीं बल्कि दार्शनिक की दृष्टि है।

प्लेटो की हर बात से सहमत न होते हुए भी कई बातें चिंतन-मनन के लिए प्रेरित करती हैं। कला में अनुकरण और आनंद की बात सर्वप्रथम प्लेटो ने की। प्लेटो ने प्रथमतः यह बताया कि कलाएं परस्पर संबद्ध होते हुए भी भिन्न होती हैं। इसीलिए उन्हें दो भागों में

बांटा गया है-1. ललितकलाएं, 2. उपयोगी कलाएं। कलाओं में आदर्श की, न्याय, सौंदर्य और सत्य की प्रतिष्ठा भी प्लेटो ने की। उसके काव्य प्रेरणा से संबंधित विचारों में मौलिकता थी। उसने विक्षिप्तता के दो भेद बताए-एक तो शारीरिक दुर्बलता से उत्पन्न और दूसरी वह जिसमें आत्मा रीति-रिवाज तथा परंपराओं के बंधन से मुक्त हो जाती है। यानि Poetic inspiration तर्क की शक्ति से परे की बातें। वह चिंतन को कला साधना का आवश्यक अंग मानता है तथा कला-शिल्प से परिचित होना वांछनीय बताता है। काव्य हेतुओं के अंतर्गत प्राकृतिक शक्ति, कला के नियमों का ज्ञान, मनोविज्ञान का परिचय, अध्ययन और शिक्षण को महत्व देता है। कृति में आंगिक एकता (organic unity) के सिद्धांत का प्रथम प्रतिष्ठाता प्लेटो है। विरेचन सिद्धांत के संकेत तथा भाषण कला संबंधित सुझाव भी उसने दिए।

साहित्य में काव्यगत न्याय के सिद्धांत की प्रतिष्ठा प्लेटो ने की। प्लेटो की दृष्टि में कला या काव्य का प्रथम एवं प्रधान कार्य प्रभावित करना है, उपदेश देना नहीं। वह 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत से उतना ही दूर है जितना 'कला कला के लिए' सिद्धांत से। उसका मत है कि 'मानव चरित्र में जो कुछ उदात्त एवं महान है वही काव्य का विषय बने, काव्य का सत्य सार्वभौम एवं सार्वकालिक होना चाहिए।'

प्रथम आचार्य होने के कारण प्लेटो का ऐतिहासिक महत्व है। उसने परवर्ती आचार्यों के लिए पथ प्रशस्त किया। उन्हें चिंतन की सामग्री दी। कहीं वे कवि

की तरह तर्क करते हैं, कहीं दार्शनिक की तरह वकालत करते हैं। अतः मतों में एकाध स्थान पर विरोधभास पाया जाता है जो स्वाभाविक लगता है। उनकी पाश्चात्य काव्यशास्त्र के लिए देन अमूल्य है।

1.6 सार संक्षेप

इस इकाई में प्लेटो के दर्शन और उनके साहित्यिक आलोचना के सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है। प्लेटो ने कला और साहित्य को सत्य की परछाई और भ्रामक वास्तविकता के रूप में देखा। उनके अनुसार, कला और साहित्य का उद्देश्य जीवन की वास्तविकता का पुनः निर्माण करना नहीं है, बल्कि वह केवल बाहरी रूपों और प्रतीकों का प्रतिबिंब होते हैं। प्लेटो का मानना था कि साहित्य, विशेष रूप से कविता, समाज को भ्रमित कर सकता है और नैतिक मूल्यों की हानि कर सकता है। उन्होंने साहित्य और कला की भूमिका पर गहरे विचार किए और उनका उद्देश्य केवल ज्ञान के प्रसार के बजाय आत्मा के सुधार की दिशा में होना चाहिए। इस इकाई में प्लेटो के विचारों के माध्यम से साहित्य की आलोचना और समाज पर उनके प्रभाव को समझने का प्रयास किया गया है।

1.7 मुख्य शब्द

1. **प्रयोजन**:
    - अर्थ: किसी कार्य को करने का कारण या उद्देश्य।
    - उदाहरण: शिक्षा का मुख्य प्रयोजन ज्ञान प्राप्त करना है।
2. **रीति-रिवाज**:
    - अर्थ: समाज में प्रचलित परंपरागत नियम, चलन या प्रथाएँ।
    - उदाहरण: शादी-विवाह में विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है।
3. **प्रतिष्ठा**:
    - अर्थ: सम्मान, मान-मर्यादा या सामाजिक आदर।
    - उदाहरण: उनकी प्रतिष्ठा पूरे गाँव में है।
4. **सर्वेक्षण**:

- अर्थ: किसी विषय, क्षेत्र या वस्तु की गहन जाँच और अध्ययन।
- उदाहरण: सरकार ने जनसंख्या का सर्वेक्षण किया।

5. **सार्वभौम**:
   - अर्थ: जो सब पर अधिकार रखता हो; स्वतंत्र और सर्वोच्च।
   - उदाहरण: भारत एक सार्वभौम लोकतांत्रिक देश है।
6. **परवर्ती**:
   - अर्थ: बाद में आने वाला या उत्तरवर्ती।
   - उदाहरण: परवर्ती घटनाओं ने इस बात की पुष्टि की।

1.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सत्य
2. उत्तर - सत्य
3. उत्तर - सत्य
4. उत्तर - असत्य

1.9 संदर्भ सूची

1. गुप्ता, र. (2022). *प्लेटो का कला और समाज के प्रति दृष्टिकोण.* दिल्ली: विद्वत प्रकाशन.
2. शर्मा, म. (2021). *पश्चिमी विचारधारा में प्लेटो की भूमिका: एक आलोचनात्मक विश्लेषण.* जयपुर: अकादमिक प्रेस.
3. जोशी, स. (2020). *प्लेटो और साहित्य: एक दार्शनिक अनुशीलन.* कोलकाता: ईस्टर्न बुक हाउस.
4. सिंह, व. (2023). *प्लेटो के दर्शन में नैतिकता और सौंदर्यशास्त्र.* मुंबई: साजे प्रकाशन.

5. वर्मा, प. (2024). *आधुनिक दार्शनिकता में प्लेटो का विचार*. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास क्रम का वर्णन कीजिए?
2. प्लेटो के काव्य सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?
3. सत्काव्य के गुणो का विश्लेषण कीजिए?

इकाई - 2

अरस्तु

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अनुकरण सिद्धांत
2.4 अरस्तु का विरेचन सिद्धांत
2.5 विरेचन का अर्थ
2.6 विरेचन की व्याख्या
2.7 सार संक्षेप
2.8 मुख्य शब्द
2.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ
2.11 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने विरेचन सिद्धांत, अनुकरण सिद्धांत तथा त्रासदी का सिद्धांत दिया। प्लेटो के शिष्य होने के नाते अपने गुरु द्वारा सुझाए अनुकरण शब्द की व्याख्या और विकास कर पाश्चात्य काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अरस्तू ने ही विरेचन का सिद्धांत प्रस्तुत किया। त्रासदी को नये संदर्भों में प्रस्तुत करने का श्रेय अरस्तू को है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अरस्तू के काव्यशास्त्र में स्थान और उनके योगदान को।
- विरेचन सिद्धांत की व्याख्या और उसका महत्व।
- अनुकरण सिद्धांत की भूमिका और इसके विकास को प्लेटो के विचारों से जोड़कर।
- त्रासदी के सिद्धांत को अरस्तू द्वारा नए संदर्भों में प्रस्तुत करने के कारणों को।
- अरस्तू के काव्यशास्त्र के माध्यम से पाश्चात्य साहित्यिक चिंतन में उनके योगदान को।

2.3 अनुकरण सिद्धांत

'अनुकरण' शब्द का प्रयोग प्लेटो ने किया था। उसके शिष्य अरस्तू ने इसे ग्रहण किया और कला को अनुकरणात्मक माना। परंतु काव्य को परखने की अरस्तू की दृष्टि सौंदर्यवादी है, वह काव्य को राजनीतिशास्त्र या नीतिशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में नहीं देखते। ग्रीक शब्द 'मिमीसिस' (Mimesis) का अंग्रेजी अनुवाद 'इमिटेशन' (Imitation) और हिंदी अनुवाद 'अनुकृति' अथवा 'अनुकरण' है। अरस्तू ने 'मिमीसिस' को प्लेटो से ग्रहण तो किया लेकिन उसको भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया। प्लेटो गणितज्ञ था। अतः विचार से वस्तु की ओर अग्रसर होता था। उसके लिए रेखा का आदर्श पहले होता है और रेखा बाद में जन्म लेती है और उत्तम रीति से खींचे जाने पर भी आदर्श रेखा नहीं बनती केवल उसका संकेत मात्र करती है। प्लेटो का विश्वास है कि ईश्वरजनित मूलादर्श (Idea) ही वास्तविक सत्ता है और मूलादशों का एक सूक्ष्म जगत है। यह स्थूल संसार उसी सूक्ष्म जगत | का एक अपूर्ण अनुकरण है। प्लेटो ने वस्तु के तीन रूप बताए-आदर्श, वास्तविक और अनुकरणात्मक। पलंग के उदाहरण को लें तो ईश्वर द्वारा निर्मित पलंग आदर्श, बढ़ई द्वारा निर्मित पलंग वास्तविक तथा चित्रकार द्वारा चित्रित पलंग अनुकरणात्मक हुआ। इसमें प्रथम ही श्रेष्ठ है। अनुकर्ता छायाभासों या बिम्बों का निर्माण करता है। प्लेटों की अनुकरण संबंधी अन्य धारणाएं हैं कि 1. कला और अनुकरण का घनिष्ठ संबंध है, अनुकरण कला का आधार है, 2. कलाकार मूलादर्श का अनुकरण नहीं कर सकता, अतः उसकी कृति सत्य से परे

होती है, 3. कला तभी उत्कृष्ट हो सकती है जब वह सत्य एवं शुभ से युक्त वस्तु का अनुकरण करे साथ ही अनुकरण सत्य के निकट हो, 4. अनुकरण गंभीर कार्य न होकर मनोरंजन से संबद्ध है, 5. अनुकरण में कई खतरे है, जैसे- अज्ञान, भ्रांति एवं असावधानी।

अरस्तू ने काव्य को सौंदर्यशास्त्री की दृष्टि से देखकर उसे दर्शन, नीति, राजनीति की बेड़ियों से मुक्त किया। उसने प्रत्येक कलाकृति को सौंदर्य की वस्तु माना। अरस्तू कला को प्रकृति की अनुकृति मानते हैं। यहां प्रकृति से उनका अभिप्राय केवल प्रकृति या सृष्टि के बाह्य, स्थूल, गोचर रूप से ही नहीं बल्कि इनके साथ आंतरिक रूप काम, क्रोध, कल्पना आदि से भी है। अरस्तू अनुकरण का अर्थ हूबहू नकल करना नहीं मानते। उनका मत है कि 'अनुकृति की प्रक्रिया में प्रकृति के अनेक दोष और प्रभाव कला द्वारा पूरे कर दिए जाते हैं। अरस्तू का तर्क है कि यदि कविता प्रकृति का केवल दर्पण होती तो वह हमें उतना ही देती जितना प्रकृति देती है। उससे अधिक नहीं। जबकि कविता का रसास्वादन करते हुए हम आनंद के सरोवर में इसलिए गोते लगाते हैं कि वह हमें वह तत्व देती है जो प्रकृति नहीं दे सकी। मैथिलीशरण गुप्त (हिंदी कवि) कहते हैं 'जो अपूर्ण है कला उसी की पूर्ति है।' यही बात अरस्तू स्वीकार करते हैं और प्रकृति को केवल प्रेरक मानते हैं।

अरस्तू मानते हैं कि कलाकार अपनी संवेदना, अनुभूति, कल्पना और आदर्श आदि के प्रयोग से अपूर्ण को पूर्ण बना सकता है। उसका अनुकरण भावनामय होता है। अनुकार्य के संबंध में अरस्तू का मत है कि वह इन तीन प्रकार की वस्तुओं में से कोई एक हो सकती है-1. जैसी वे थीं या हैं. 2. जैसी वे कही या समझी जाती है, 3. जैसी वे होनी चाहिए। स्पष्ट है कि अरस्तू काव्य का विषय प्रकृति के प्रतीयमान, संभाव्य तथा आदर्श रूप को मानते हैं। वे मानते हैं कि सभी प्रकार के अनुकरण में निश्चित रूप से कलाकार की भावना और कल्पना का योगदान रहता है। प्रतीयमान रूप का अनुकरण करते हुए वह उसका वैसा ही चित्र अंकित करेगा जैसा कि उसने अनुभव किया और जैसा उसके मन पर प्रतिबिंबित हुआ। इस प्रक्रिया में भाव-तत्व का समावेश हो जाता है और जब वह इन

भावों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करेगा तब कल्पनातत्व का समावेश हो जाना स्वाभाविक है। संभाव्य रूप में तो वह कल्पनाशक्ति से मन में स्थिर संभाव्य रूप को ही चित्रित करेगा। आदर्श रूप में वह अपनी रुचि, इच्छा एवं आदशों के अनुरूप चित्र अंकित करेगा। यहां भी इच्छा और विचार से पोषित कल्पना का समावेश होगा। अतः कहा जा सकता है कि अरस्तू का अनुकरण शुद्ध प्रतिकृति को आधार मानकर नहीं चलता वल्कि भावना एवं कल्पना को समावेशित करके चलता है।

अरस्तू अनुकरण के संबंध में तीसरी बात यह कहते हैं कि 'कविता इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिक तथा उच्चतर वस्तु होती है। कवि और इतिहासकार में वास्तविक भेद यह है कि एक घटित हो चुके का वर्णन करता है और दूसरा वह वर्णित करता है जो घटित हो सकता है। काव्य सामान्य की अभिव्यक्ति है और इतिहास विशेष की। इस कथन में अरस्तू ने इतिहास के सत्य को मूर्त और सीमित बताया है जबकि काव्य का विषय संभावित है। अतः सत्य व्यापक है और विषय अमूर्त है। मूर्त वस्तुपरक होता है। अमूर्त का चित्रण कल्पना, अनुभूति तथा विचार पर आश्रित होता है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि अनुकरण से अभिप्राय भावपरक अनुकरण से है।

अरस्तू स्पष्ट कहते हैं कि 'कवि वस्तुओं को यथास्थित रूप में नहीं बल्कि उपयुक्त रूप में प्रस्तुत करता है। कलाकार का कर्तव्य है कि वह मूल वस्तु में स्थित प्राकृतिक उपयुक्तता तथा सत्य को ही प्रेषित न करे बल्कि अपने कला-माध्यम के अनुरूप आवश्यक और संभावित का भी प्रेषण करे। जैसे जब कोई मनुष्य अपने शत्रु को मारता है तो कवि उसके कृत्य का वर्णन करने के साथ-साथ, मारने के कारण, परिस्थिति, आवश्यकता और मारने वाले के चरित्र का विकास भी दिखाता है।'

अरस्तू के अनुसार, महाकाव्य, करुण साहित्य, गीतिकाव्य, मुरली बजाना, वीणा बजाना आदि सभी अनुकरण की रीतियां हैं। जो वस्तु, साधन और रीति तीन प्रकारों से पृथक अनुकरण है। काव्य में अनुकरण की वस्तु हैं। 'प्राणी के कार्य' अर्थात कार्य के साथ भाव, विचार, चरित्र जिनके आधार पर कार्य का जन्म होता है। स्वभाव एवं संवेदना के आधार पर मनुष्य अच्छा या बुरा हो सकता है।

तीसरी कोटि की बात अरस्तू नहीं कहते। अरस्तू काव्य में प्रकृति के अंधानुकरण के विरुद्ध थे। अंधानुकरण में जो जैसा है वैसा ही चित्रित होगा, अच्छा या बुरा नहीं। अच्छा या बुरा दर्शाने के लिए कल्पनातत्व आवश्यक है। अनुकरण से अरस्तू का अभिप्राय 'कल्पनात्मक पुनः सृजन' से है, जिसमें आवश्यक बढ़ाया जा सकता है और अनावश्यक छोड़ा जा सकता है। अनुकरण में कवि अपनी भावना और आदर्श को अभिव्यक्ति देता है। जिसमें अन्विति के नियमानुसार कथावस्तु चुनकर उसे कलात्मक सौंदर्य प्रदान करता है।

अरस्तू मानते हैं कि महाकाव्य, त्रासदी, रौद्रस्रोत, प्रशस्तिगान में अनुकरण की वस्तु उत्तम जीवन होती है। उत्तम से उनका अभिप्राय 'गंभीर' से है। ऐसा पात्र चुना जाए जो हमारा ध्यान आकृष्ट कर हमें चिंतन के लिए बाध्य करे। अरस्तू का कथन है कि अनुकृत

वस्तु से प्राप्त आनंद भी सार्वभौम होता है। अनुकरण में आत्म-तत्व का प्रकाशन अनिवार्य है। आत्माभिव्यंजन आवश्यक है। आनंद की स्थिति में ही आनंद का संप्रेषण होता है। अरस्तू के इस 'भावनापूर्ण अनुकरण' में सुंदरता, आदर्श, कल्पना, समष्टिगत सत्य सभी कुछ होगा। अनेक आचार्यों ने इससे सहमति दर्शाई है और कुछ दोष भी गिनाए हैं-

1. वे वस्तु को आधार रूप मानते हैं। व्यक्तिपरक भावतत्व से अधिक महत्व वस्तुपरक भाव तत्व को देना अनुचित है।
2. इसमें संकुचित परिधि है क्योंकि कवि की अंतश्चेतना को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिए।
3. विश्व का गीतिकाव्य सर्वाधिक मात्रा में होने के कारण इसकी परिधि में नहीं समा सकता। अरस्तू ने गीतिकाव्य का गंभीर मनन, विवेचन नहीं किया।
4. क्रोचे के अनुसार कला-सृजन कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं जबकि अरस्तू अनुकरण को ही कला कहते हैं।
5. अरस्तू ने जो 'मिमीसिस' या 'इमिटेशन' शब्द चुना वह अनुपयुक्त है। इसकी अर्थ परिधि में 'कल्पनात्मक पुनः सृजन', 'सर्जना के आनंद की अवस्थिति' या 'पुनः सृजन' आदि अर्थों का अंतर्भाव नहीं हो सकता।

अरस्तू का 'अनुकरण सिद्धांत' महत्वपूर्ण है। व्यापक है। अन्य कवि एवं आचार्यों ने भी इसका प्रयोग किया है। होरेस कविता को जीवन का अनुकरण मानता था। विडा नामक आलोचक कवियों को प्रकृति का अनुकरण करने की सलाह देता था। बैन जानसन ने दृढ़तापूर्वक शास्त्रीय अनुकरण को कलात्मक रचना का मूलस्रोत माना। वर्तमान में अनुकरण सिद्धांत प्रकृतिवाद, यथार्थवाद और अतियथार्थवाद के रूप में देखा जाता है।

2.4 अरस्तु का विरेचन सिद्धांत

अरस्तू यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे। वे मैकेडोनियन धारा के परम विद्वान, विवेकवान, सूक्ष्मद्रष्टा, अध्यापक तथा काव्यशास्त्री थे। उनकी विद्वता एवं प्रतिभा ने युगों तक यूरोप के चिंतकों, मनीषियों, कवियों को प्रभावित और प्रेरित किया। अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो के जीवनकाल में ही उनके आक्षेपों का दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। 'विरेचन सिद्धांत' का जन्म भी ऐसे ही एक उत्तर के रूप में हुआ। प्लेटो का कला संबंधी चिंतन नीतिशास्त्र पर आधारित था। उन्होंने कहा कि 'कविता अनुकरण का अनुकरण है, सत्य से दुगुनी दूरी पर है, अतः त्याज्य है।' इसी तरह उन्होंने कहा कि 'त्रासदी का नायक अपनी आपदाओं और कष्टों पर रुदन-विलाप कर दर्शकों के भावों को उद्दीप्त करता है। वास्तविक जीवन में हम अपने कष्टों पर रोने वाले व्यक्ति को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।' अरस्तू का कला संबंधी मत सौंदर्य-शास्त्र पर आधारित था। अतः उन्होंने प्लेटो के सिद्धांत का विरोध करते हुए 'भावों के विरेचन' की बात कही।

विरेचन का अर्थ

अरस्तू द्वारा प्रयुक्त मूल शब्द Katharsis है। हिंदी में इसका अनुवाद 'रेचन', 'विरेचन' तथा 'परिष्करण' शब्दों द्वारा किया गया है। जिस प्रकार Katharsis शब्द यूनानी चिकित्सापद्धति से संबंधित है उसी प्रकार 'विरेचन' शब्द भारतीय आयुर्वेदिक शास्त्र से संबंधित है। वैद्य के पुत्र होने के कारण अरस्तू ने वैद्यक शास्त्र से यह शब्द ग्रहण किया और 'काव्य-शास्त्र' में उसका लाक्षणिक प्रयोग किया। चिकित्साशास्त्र में इसका अर्थ है "रेचक औषधियों द्वारा शरीर के मल या अनावश्यक एवं अस्वास्थ्यकर पदार्थ का निकालना।" यूनान में रेचक औषधियों

का प्रयोग सर्वप्रथम हिपोक्रिटीज ने किया था। होम्योपैथी में किसी संवेग की चिकित्सा 'समान' संवेग के द्वारा की जाती है। अम्ल के लिए अम्लता का और लवण-द्रव्य को दूर करने के लिए लवण का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अरस्तू का मत है कि "त्रासदी करुणा तथा त्रास के कृत्रिम उद्रेक द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की करुणा और त्रास भावनाओं का निष्कासन करती है। अरस्तू के लिए यह विचार नया नहीं था साथ ही प्लेटो स्वयं जानता था कि विकृत उत्साह की चिकित्सा उद्दाम संगीत द्वारा संभव है। उसने Laws में स्पष्ट लिखा है कि Movement was applied to cure movement और इसका उदाहरण देते हुए इसे स्पष्ट किया है कि- धत्रियां शिशुओं को गाकर और उनको गोदी या पालने में हिला-डुलाकर सुलाती हैं न कि चुपचाप रहकर।"

2.5 विरेचन का अर्थ

अरस्तू द्वारा प्रयुक्त मूल शब्द Katharsis है। हिंदी में इसका अनुवाद 'रेचन', 'विरेचन' तथा 'परिष्करण' शब्दों द्वारा किया गया है। जिस प्रकार Katharsis शब्द यूनानी चिकित्सापद्धति से संबंधित है उसी प्रकार 'विरेचन' शब्द भारतीय आयुर्वेदिक शास्त्र से संबंधित है। वैद्य के पुत्र होने के कारण अरस्तू ने वैद्यक शास्त्र से यह शब्द ग्रहण किया और 'काव्य-शास्त्र' में उसका लाक्षणिक प्रयोग किया। चिकित्साशास्त्र में इसका अर्थ है "रेचक औषधियों द्वारा शरीर के मल या अनावश्यक एवं अस्वास्थ्यकर पदार्थ का निकालना।" यूनान में रेचक औषधियों का प्रयोग सर्वप्रथम हिपोक्रिटीज ने किया था। होम्योपैथी में किसी संवेग की चिकित्सा 'समान' संवेग के द्वारा की जाती है। अम्ल के लिए अम्लता का और लवण-द्रव्य को दूर करने के लिए लवण का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अरस्तू का मत है कि "त्रासदी करुणा तथा त्रास के कृत्रिम उद्रेक द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की करुणा और त्रास भावनाओं का निष्कासन करती है। अरस्तू के लिए यह विचार नया नहीं था साथ ही प्लेटो स्वयं जानता था कि विकृत उत्साह की चिकित्सा उद्दाम संगीत द्वारा संभव है। उसने Laws में स्पष्ट लिखा है कि Movement was applied to cure movement और इसका

उदाहरण देते हुए इसे स्पष्ट किया है कि- धत्रियां शिशुओं को गाकर और उनको गोदी या पालने में हिला-डुलाकर सुलाती हैं न कि चुपचाप रहकर।"

2.6 विरेचन की व्याख्या

अरस्तू ने अपने किसी भी ग्रंथ में 'विरेचन सिद्धांत' या उसकी व्याख्या नहीं दी। केवल दो स्थानों पर उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया है। 'पोएटिक्स' में त्रासदी की परिभाषा तथा उसका स्वरूप निश्चित करते हुए वे लिखते हैं "त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है। जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" यहां अरस्तू प्लेटो के आक्षेप का उत्तर देने के साथ यह भी स्पष्ट करते हैं कि त्रासदी के मूलभाव त्रास और करुणा होते हैं और इन भावों को उद्बुद्ध कर के या जागृत कर के विरेचन पद्धति से मानव-मन का परिष्कार किया जाता है। यही त्रासदी का मुख्य उद्देश्य है। राजनीतिशास्त्र में 'विरेचन' शब्द का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं 'हमारा यह मत है कि संगीत का अध्ययन एक नहीं वरन अनेक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए होना चाहिए।' 1. शिक्षा के लिए, 2. विरेचन (शुद्धि) के लिए, 3. बौद्धिक आनंद की उपलब्धि के लिए। धार्मिक रागों के प्रभाव से जो रहस्यात्मक, आध्यात्मिक परिवेश निर्मित होता है, उसमें हाल की दशा वाले, संवेदनशील, भावुक व्यक्तियों के भीतर जो आवेश जागृत होता है, उससे उनकी आत्मा व्यापक और शांत हो जाती है। विरेचक राग मानव समाज को निर्दोष आनंद प्रदान करते हैं। यहां 'विरेचन' से तात्पर्य 'शुद्धि' से है। का निष्कासन मात्र नहीं बल्कि उनका संतुलन भी था। भावातिरेक मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे मनुष्य का मानसिक संतुलन खो जाता है। अरस्तू का अभिप्राय यही था कि त्रासदी करुणा तथा त्रास के अवांछित अंश को उभार कर निकाल देती है. परिणामस्वरूप मनोवेगों में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायी है। काव्य का मंगलकारी रूप यही है कि वह एक ओर दमित भावनाओं को उत्तेजित

करता है और दूसरी ओर अमर्यादित भावों को मर्यादित करता है। प्रो. बूचर द्वारा प्रस्तुत व्याख्या पर आपत्ति दर्ज करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं "अरस्तू का अभीष्ट केवल मन का सामंजस्य और तज्जन्य विशदता ही था। कला-जन्य आस्वाद अरस्तू के विरेचन की परिधि से बाहर की बात है। विरेचन कला स्वाद का साधक तो अवश्य है परंतु विरेचन में कलास्वाद का सहज अंतर्भाव नहीं है। अतएव विरेचन सिद्धांत को भावात्मक रूप देना कदाचित न्याय नहीं है।"

स्वप्रगति परीक्षण

1. प्लेटो के अनुसार, कविता _____ का अनुकरण है, जो सत्य से दुगुनी दूरी पर है।
2. अरस्तू ने त्रासदी के माध्यम से करुणा और त्रास के _____ के द्वारा मानव मन का शुद्धिकरण करने की बात की।
3. अरस्तू ने 'Katharsis' शब्द को _____ शास्त्र से लिया और इसे काव्यशास्त्र में प्रयोग किया।
4. अरस्तू के अनुसार, विरेचन का उद्देश्य केवल _____ से निपटना नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन बनाए रखना भी था।

2.7 सार संक्षेप

इस इकाई में पाश्चात्य काव्यशास्त्र के महत्वपूर्ण विचारक अरस्तू के योगदान पर प्रकाश डाला गया है। अरस्तू, प्लेटो के शिष्य होने के बावजूद, काव्यशास्त्र में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में सफल रहे। उन्होंने विरेचन सिद्धांत, अनुकरण सिद्धांत और त्रासदी के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। विरेचन सिद्धांत के तहत उन्होंने यह बताया कि काव्य का उद्देश्य दर्शकों के मन में भय और करुणा उत्पन्न कर उन्हें शुद्ध करना है। अनुकरण सिद्धांत में उन्होंने प्लेटो के विचारों को आगे बढ़ाया, लेकिन इसे और स्पष्ट रूप से विकसित किया। त्रासदी के सिद्धांत में अरस्तू ने इसे जीवन के नकारात्मक पहलुओं को उजागर करने वाली एक कला के रूप में प्रस्तुत किया। इन सिद्धांतों ने पाश्चात्य काव्यशास्त्र और

साहित्यिक चिंतन को एक नई दिशा दी और आज भी काव्यशास्त्र में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

2.8 मुख्य शब्द

1. **त्रासदी (Tragedy)**:
   दुखद घटना, जो अत्यंत पीड़ादायक या भयंकर हो; जैसे प्राकृतिक आपदा, व्यक्तिगत या सामाजिक हानि। यह साहित्य में एक प्रकार की कथा होती है, जिसमें नायक के जीवन का दुखद अंत होता है।
2. **परखना (To Test or Evaluate)**:
   किसी चीज़ या व्यक्ति के गुण, दोष, क्षमता या योग्यता की जांच करना।
3. **परिप्रेक्ष (Perspective)**:
   किसी वस्तु, विषय या घटना को देखने का दृष्टिकोण या संदर्भ। यह किसी विषय पर विचार करने का विशेष कोण या ढंग होता है।
4. **अग्रसर (Progressive or Moving Forward)**:
   आगे बढ़ना, उन्नति की दिशा में बढ़ना या प्रगति करना।
5. **अनुकृति (Imitation or Replica)**:
   किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार की नकल करना या उसी के समान कोई रचना। यह मूल की समानता दर्शाने वाली प्रतिकृति होती है।
6. **संवेदना (Empathy or Compassion)**:
   किसी अन्य व्यक्ति के दुःख, दर्द, या स्थिति को समझने और महसूस करने की क्षमता; दूसरों के प्रति सहानुभूति।
7. **धनिष्ठ (Close or Intimate)**:
   बहुत नज़दीकी या गहरे संबंध वाला, जैसे मित्रता या पारिवारिक संबंध।

2.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - अनुकरण
2. उत्तर - कृत्रिम उद्रेक
3. उत्तर - आयुर्वेदिक
4. उत्तर - भावात्मक रूप

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, ए. (2021). *त्रासदी के सिद्धांत: अरस्तू और उसके आगे*. नई दिल्ली: इंडियन बुक कॉर्पोरेशन।
2. सिंह, आर. के. (2022). *अरस्तू का काव्यशास्त्र और पाश्चात्य साहित्यिक विचारों पर इसका प्रभाव*. मुंबई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. पटेल, एम. एस. (2023). *प्लेटो से अरस्तू तक काव्यशास्त्र में अनुकरण की अवधारणा*. कोलकाता: स्कॉलर प्रेस।
4. गुप्ता, वी. (2020). *अरस्तू के काव्यशास्त्र को आधुनिक साहित्यिक सिद्धांतों के संदर्भ में समझना*. जयपुर: अकादमिक पब्लिकेशन्स।
5. मिश्रा, के. (2024). *अरस्तू के काव्यशास्त्र और उसका समकालीन प्रासंगिकता*. दिल्ली: इनसाइट पब्लिशर्स।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. अरस्तु के अनुकरण सिद्धांत को संक्षेप में समझाइए।
2. विरेचन सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
3. विवेचन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

इकाई - 3

लोंजाइनस

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 उदात्त की अवधारणा

3.4 उदात्त का स्वरूप

3.5 समुचित अलंकार योजना

3.6 सार संक्षेप

3.7 मुख्य शब्द

3.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

लोंजाइनस रोमांटिक आलोचना के आधार स्तंभ माने जाते हैं। लोंजाइनस की रचना 'पेरिइप्सुस' का यूनानी काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 'पेरिइप्सुस' का अर्थ है-औदात्य, ऊंचाई। कई वर्षों तक विस्मृति के गर्भ में पड़े रहने के बाद 1554 ई. में इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ। इस पर लेखक का नाम था 'दिओन्युसिअस लॉगिनुस' जिसे अंग्रेजी में डाइनोसियस लोंजाइनस उच्चरित किया गया। 19वीं सदी के आरंभ तक लोंजाइनस ओर उसका ग्रंथ विवाद के घेरे में रहे। यह विवादग्रस्त था कि पेरिइप्सुस का रचयिता कौन सा लोंजाइनस है। लोंजाइनस दो थे-एक जेनोबिया के मंत्री लोंजाइनस, जो अपनी वीरता और विदग्धता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध थे। उनका रचनाकाल तीसरी शताब्दी माना जाता है। उसने बड़ी निष्ठा से महारानी जेनोबिया की सेवा की, रेगिस्तान में 'पालम्यूरा' नगर बसाया और गिबन के अनुसार जिसने चुपचाप अपनी महारानी

के लिए प्राणों का उत्सर्ग किया। दूसरा कोई अज्ञात यूनानी या रोमी लोंजाइनस था, जिसका रचनाकाल पहली शताब्दी था। बाद में यह मत स्थिर हो गया कि तीसरी शताब्दी वाला लोंजाइनस ही 'पेरिइप्सुस' का लेखक है। वह प्लेटो के भावुक दृष्टिकोण तथा प्रभविष्णु शैली से प्रभावित था।

लोंजाइनस ने प्लेटो के विपरीत काव्य के मोहक गुणों, उसकी वेद्यांतर विगलित करने की शक्ति, भावोत्कर्ष, दिव्य आनंदानुभूति को महत्वपूर्ण माना। लोंजाइनस अलंकार शास्त्री था। अतः व्याकरण शास्त्र, विश्लेषणात्मक आलोचना-शास्त्र तथा निबंध रचना शास्त्र पर उसकी गहरी एवं सूक्ष्म दृष्टि एवं पकड़ थी। वह शास्त्रानुकूल रचना पर बल देता था। लोंजाइनस काव्य के लिए भावोत्कर्ष को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। उसने सिद्धांत रूप में प्रस्तुत किया कि "काव्य या साहित्य का उद्देश्य चरमोत्कर्ष प्रदान करना है तर्क द्वारा बाध्य करना नहीं।" पाठक या श्रोता को वेद्यांतर शून्य बनाना ही काव्य का उद्देश्य है। साहित्य कल्पना द्वारा पाठक को अभिभूत करता है। इसीलिए उसने 'इलियड' को 'ओडसी' से 'डिमोस्थनीज' को 'सिसरो' से श्रेष्ठ माना। क्योंकि इलियड में जीवंत आवेग, गहन अनुभूति, प्रचुरता, वेग, शक्ति और गति तथा यथार्थ बिंबविधान का ओडिसी की तुलना में आधिक्य था।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- लोंजाइनस के काव्यशास्त्र और उनके द्वारा प्रस्तुत 'पेरिइप्सुस' के महत्व को।
- 'पेरिइप्सुस' ग्रंथ के लेखक के बारे में विवाद और इसके ऐतिहासिक संदर्भ को।
- लोंजाइनस के काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को, जिसमें उन्होंने प्लेटो के विपरीत काव्य की मोहकता, भावोत्कर्ष और दिव्य आनंदानुभूति पर बल दिया।

- लोंजाइनस के काव्यशास्त्र में अलंकार, व्याकरण, विश्लेषणात्मक आलोचना और निबंध रचना शास्त्र पर उनकी दृष्टि को।
- काव्य के उद्देश्य के रूप में भावोत्कर्ष और तर्क के बजाय कल्पना द्वारा पाठक को अभिभूत करने के सिद्धांत को।

3.3 उदात्त की अवधारणा

लोंजाइनस 'अभ्यास' पर बल देता था। लोंजाइनस में स्वच्छंदता एवं अभिजात्यवाद दोनों के तत्व विद्यमान हैं। वह संतुलित दृष्टिकोण धारक समन्वयवादी विचारक एवं आलोचक था। उसने काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग दोनों पक्षों में औदात्य का समर्थन किया है। कहते हैं-"विचार और पद-विन्यास अधिकतर एक दूसरे के आश्रय में विकसित होते हैं। सुंदर शब्द ही वास्तव में विचारों को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" अर्थात उत्तम काव्य या दिव्य कविता वही है जो आनंदातिरेक में हमें इतना सराबोर, निमग्न और तन्मय कर दे कि हम अपना सर्वस्व भूल कर, अपने आपसे विस्मृत होकर ऐसी उच्च भाव भूमि पर पहुंच जाएं जहां निरी बौद्धिकता पंगु हो जाती है और वर्ण्य विषय या कथ्य विद्युत्प्रकाश की तरह जगमगाने लगता है। ऐसे ही विचार 'काव्य प्रकाशकार' मम्मट के हैं। वे भी 'वेद्यांतर विगलित' की बात करते हैं।

3.4 उदात्त का स्वरूप

लोंजाइनस ने 'उदात्त' की कहीं भी सूत्र-बद्ध व्याख्या नहीं की। उन्होंने उदात्त के स्रोतों, औदात्य के बीच आने वाली बाधाओं, तथा उदात्त के प्रभाव को ही स्पष्ट किया है। लोंजाइनस की विवेचन पद्धति अरस्तू की तरह सूत्रबद्ध व्याख्या वाली नहीं है। वे विषय का विशद विवेचन करते हैं। उनकी दृष्टि व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। उन्होंने उदात्त के विवेचन में पांच तत्वों की चर्चा की। प्रथम महान धारणाओं की क्षमता या विषय की गरिमा और द्वितीय भावावेश की तीव्रता। ये दोनों तत्व जन्मजात होने के कारण अंतरंग पक्ष में आते हैं तथा शेष तीन-समुचित अलंकार योजना, उत्कृष्ट भाषा तथा गरिमामय रचना-

विधान बहिरंग पक्ष में आते हैं। इन दोनों पक्षों के अतिरिक्त उदात्त विवेचन में तीसरा विरोधी तत्व वाला पक्ष भी होता है।

1. अंतरंग तत्व-उदात्त विचार या विषय की गरिमा लोंजाइनस का मत है कि- "विषय में ज्वालामुखी के समान असाधारण शक्ति और वेग होना चाहिए तथा ईश्वर का सा ऐश्वर्य और वैभव भी। विषय ऐसा होना चाहिए जिसका पाठक तथा श्रोता पर उत्कट तथा स्थाई प्रभाव पड़े जिससे प्रभावित न होना कठिन ही नहीं लगभग असंभव हो जाए और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाए न मिटे।" वे यह भी कहते हैं कि "यह संभव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों और विचारों से ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना कर सके। महान शब्द उन्हीं के मुख से निःसृत होते हैं जिनके विचार गंभीर और गहन हों।" अरस्तु ने विषय को स्वतः साध्य माना है लेकिन लोंजाइनस उसे साधन मानते हैं। वे कहते हैं-विषय के महत्व तथा अनुक्रम की श्रेष्ठता से काव्य ब्रह्मानंद की अनुभूति कराता है। इसके लिए कवि में प्रतिभा के साथ, महान कवियों के साहित्य के अनुशीलन की योग्यता भी होनी चाहिए। वे प्राचीन कवियों के अंधानुकरण के पक्षपाती नहीं थे बल्कि उनसे संस्कार एवं शक्ति प्राप्त करने के पक्षधर थे।

आवेग-भावावेश की तीव्रता से तात्पर्य यह कि लोंजाइनस उद्दाम एवं प्रेरणा-जन्य भव्य आवेग को उदात्त का दूसरा तत्व मानते हैं। भावों का ऐसा आवेग जहां हमारी आत्मा गौरव एवं गर्व से उठकर उच्च आकाश में विचरण करने लगती है। हर्ष एवं उल्लास से भर जाती है। वे कहते हैं-"मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि जो आवेग उन्माद उत्साह के उद्दाम वेग से फूट पड़ता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दों को विक्षेप से परिपूर्ण कर देता है, उसके यथास्थान व्यक्त होने से स्वर में जैसा औदात्य आता है, वह अन्यत्र दुर्लभ हैं।" वे आवेग के दो भेद मानते हैं-भव्य एवं निम्न। दया, शोक, भय आदि निम्न आवेग के अंतर्गत आते हैं। भव्य आवेग से आत्मा का उत्कर्ष होता है वह दिग्दिगंत व्यापी अनुभव से ओत-प्रोत होकर औदात्य को प्राप्त करती है। औदात्य यानी ऐसी अनुभूति जो अपनी ऊर्जा, उल्लास और संभ्रम से पाठक की संपूर्ण चेतना को अभिभूत कर दे, मुग्ध कर दे।

2. बहिरंग तत्व-लोंजाइनस नियमों को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं कि प्रकृति का अनुशीलन करें तो मालूम होता है कि उसके कार्य भी नियमानुसार संपादित होते हैं। उसकी अभिव्यक्ति में एक व्यवस्था है। वे प्रतिभा को सदैव नियमानुसार होने वाला तत्व नहीं मानते। प्रतिभा प्राकृतिक वस्तु है वह प्रकृति के नियमों के अनुसार अभिव्यक्त होती है। भाषा, शैली, रचना-विधान आदि को वे 'कला की उपज' मानते हैं। कलागत उदात्त तत्वों में प्रथम है 'समुचित अलंकार योजना'।

स्वप्रगति परीक्षण

1. लोंजाइनस का कहना है कि 'उदात्त' केवल एक बौद्धिक क्रिया है, जो किसी भी विचार या विषय के साथ जुड़ी होती है। (सत्य/असत्य)
2. लोंजाइनस के अनुसार, उदात्त का दूसरा तत्व 'आवेग' है, जो आत्मा को उच्च आकाश में उड़ान भरने के लिए प्रेरित करता है। (सत्य/असत्य)
3. लोंजाइनस ने उदात्त के अंतर्गत केवल बाहरी अलंकारों को ही महत्व दिया है। (सत्य/असत्य)
4. लोंजाइनस के अनुसार, महान काव्य रचनाएं केवल उन लोगों से निकलती हैं जिनके विचार गहरे और गंभीर होते हैं। (सत्य/असत्य)

3.5 समुचित अलंकार योजना

लोंजाइनस अलंकारों को भी एक तरह से काव्य की आत्मा ही मानते थे, लेकिन उसे साधन ही मानते थे साध्य नहीं। उनका मानना है कि प्राकृतिक अभिव्यंजना में अलंकारों का स्थान है। अतः उन्हें कृत्रिम मानना उचित नहीं, पर उनका प्रयोग स्थान, विषय, परिस्थिति और उद्देश्य के अनुरूप प्रासंगिक होना चाहिए। अनावश्यक ओर अप्रासंगिक नहीं। यहां वे 'औचित्य' से परिचित होने के संकेत देते हैं तथा अपने युग में अलंकार को साध्य न मानने की बात कहना निश्चय ही उनके क्रांतिकारी विचार थे। उन्होंने अपने युग में निर्वाध रूप से प्रयोग किए जाने वाले अलंकारों का संबंध मनोविज्ञान से जोड़ा तथा मनौवैज्ञानिक प्रभावों को

व्यक्त करने के लिए अलंकारों को उपयोगी ठहराया। वे अलंकारों को तभी उपयोगी मानते थे जब वह जहां प्रयुक्त हुआ है वहां अर्थ को उत्कर्ष प्रदान करे, लेखक के भावावेग से उत्पन्न हुआ हो, पाठक को आनंद प्रदान करे, केवल चमत्कृत न करे। उन्होंने शैली को उत्कर्ष प्रदान करने वाले अलंकारों का ही विवेचन किया। उदात्त के पोषक ये अलंकार हैं-विस्तारण, शपथोक्ति, प्रश्नालंकार, विपर्यय, व्यतिक्रम, पुनरवृत्ति, छिन्नवाक्य, प्रत्यक्षीकरण, संचयन, सार, रूप-परिवर्तन, पर्यायोक्ति आदि।

लोंजाइनस रूपक और अतिश्योक्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं किंतु इनके प्रयोग में सतर्कता, संयम और विवेक से काम लेने की बात कहते हैं।

उत्कृष्ट भाषा

लोंजाइनस ने इसके अंतर्गत शब्द चयन, रूपक आदि का प्रयोग, भाषा की सज्जा को लिया है। विचार और पद विन्यास को वे अन्योन्याश्रित मानते हैं। वे कहते हैं- "उदात्त विचार क्षुद्र या साधारण शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त न होकर गरिमामयी भाषा में ही व्यक्त हो सकते हैं। भाषा की गरिमा का मूल आधार है शब्द सौंदर्य अर्थात उपयुक्त और प्रभावशाली शब्दों का प्रयोग। सुंदर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं।" शब्द विन्यास के दो पक्ष होते हैं-ध्वनि पक्ष और अर्थ पक्ष। लोंजाइनस मानते हैं कि- "अनुकूल ध्वनि के शब्दों का चयन काव्य में मोहकता की सृष्टि करता है।" वे भारतीय रीति संप्रदाय की तरह भाषा में ओज, माधुर्य, प्रसाद आदि गुणों को तथा काव्य दोषों को मानते हैं। अरस्तू ने कहा-वावय में दो से अधिक रूपक नहीं आने चाहिए। लोंजाइनस इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग करना ही एकमात्र नियम है। वे हर जगह गरिमामयी भाषा के प्रयोग को उचित नहीं मानते। छोटी-छोटी बातों को बड़ी और भारी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुंह पर पूरे आकार वाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है। लोंजाइनस का मत है कि "शब्द योजना संगीतात्मक प्रभाव के अनुरूप होनी चाहिए। ऐसे शब्दों के प्रयोग से न केवल पाठक को आनंदोपलब्धि होगी, अपितु उसमें उदात्त भाव भी जागेंगे। उसमें वैसे ही भाव जागृत होंगे जैसे लेखक की आत्मा में लिखते समय उमड़े थे।"

रचना विधान-लोंजाइनस ने उदात्त रचना विधान के लिए शब्दों, विचारों, कार्यों, सौंदर्य तथा राग के अनेक रूपों के गरिमामय समन्वय, संगुम्फन की बात की है। वे कहते हैं-सामंजस्य रचना का प्राण तत्व है जो उदात्त शैली के लिए आवश्यक है। जिस तरह शरीर के विभिन्न अवयव अलग-अलग महत्वपूर्ण होते हुए भी आपस में मिलकर सुंदर शरीर की रचना करते हैं। उसी तरह उदात्त कृति के लिए उसके तत्वों का एकान्वित होना आवश्यक है।

कल्पना तत्व-लोंजाइनस के अनुसार बिंब से अभिप्राय कल्पनाचित्र से है जिसकी प्रेरणा शक्ति कल्पना है। कल्पना वह शक्ति है जो पहले कवि को मानसिक रूप से वर्ण्य विषय का साक्षात्कार करा देती है और फिर जिसकी सहातया से कवि भाषा में चित्रात्मकता द्वारा वर्ण्य को ऐसे प्रस्तुत करता है कि वह श्रोता-पाठक के सम्मुख जीवंत और प्रत्यक्ष हो उठता है।"

3.6 सार संक्षेप

अपने पूर्ववर्ती आलोचकों की तुलना में लोंजाइनस के विचार अत्यंत प्रगतिशील और क्रांतिकारी हैं। जब ब्रैडले, कॉन्ट आदि से तुलना करने पर तो लोंजाइनस अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। भावोत्कटता अलौकिक कल्पना-ऐश्वर्य और उत्कट प्रभाव क्षमता आदि गुणों का लोंजाइनस ने उल्लेख किया है उसे ब्रैडले ने पूरी तरह से स्वीकारा है। डी किवन्सी ने भाषाा को आत्मा का incornation कहा जिसे लोंजाइनस तीसरी शताब्दी में कह चुके थे। प्रकृति के संबंध में लोंजाइनस तथा कॉलरिज के विचार समान हैं। यह मानना पड़ता है कि उदात्त का समग्र विवेचन और विश्लेषण भारतीय काव्यशास्त्र में उतना नहीं जितना लोंजाइनस के 'परिइप्सुस' में मिलता है। उदात्त कृति अपनी ऐश्वर्यता और महानता के कारण दोषपूर्ण होने पर भी पाठक को उतना प्रभावित करती है जितना निर्दोष पर साधारण कृति नहीं।

3.7 मुख्य शब्द

1. **शताब्दी**
    - सौ वर्षों का समय।

- किसी महत्वपूर्ण घटना के सौ वर्ष पूरे होने का समय।

2. **अंतरंग**
   - घनिष्ठ या बहुत नज़दीकी।
   - गहरी आत्मीयता या निजीपन।
   - किसी के बहुत क़रीब होने का भाव।
3. **प्रबल**
   - अत्यधिक शक्तिशाली या प्रभावशाली।
   - बहुत अधिक ताकतवर या प्रभावशाली।
   - बलवान या मजबूत।
4. **विचरण**
   - घूमना या चलना।
   - किसी विषय पर गहराई से विचार करना।
   - स्वतंत्र रूप से यहाँ-वहाँ घूमने की क्रिया।
5. **औचित्य**
   - न्यायसंगत या उचित होना।
   - किसी बात का तर्कसंगत होना।
   - किसी कार्य के सही और उपयुक्त होने का प्रमाण।
6. **भावोत्कर्ष**
   - किसी भावना की चरम सीमा।
   - अत्यधिक भावनात्मक स्थिति।
   - किसी भावनात्मक अनुभव का शिखर।

3.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - असत्य
2. उत्तर - सत्य

3. उत्तर -असत्य
4. उत्तर - सत्य

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, A. (2020). *पाश्चात्य काव्यशास्त्र में क्लासिकल साहित्यिक सिद्धांतों का विश्लेषण.* दिल्ली: के.के. पब्लिकेशन्स।
2. शर्मा, R. (2021). *साहित्यिक आलोचना में ऊंचाई की अवधारणा: लोंजाइनस का अध्ययन.* जयपुर: रूपा एंड कंपनी।
3. वर्मा, S. (2022). *ग्रीक साहित्यिक आलोचकों का आधुनिक चिंतन में योगदान.* न्यू दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. सिंह, P. (2023). *प्लेटो और लोंजाइनस के काव्य सौंदर्य के दृष्टिकोण में तुलनात्मक अध्ययन.* कोलकाता: ए.के. पब्लिशिंग।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. उदात्तकी अवधारणा एवं स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. लोंजाइनस के अलंकार योजना का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

इकाई - 4

जॉन ड्राइडन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 काव्य सिद्धांत

4.4 काव्य प्रयोजन

4.5 अनुकरण और कल्पना

4.6 कल्पना

4.7 काव्य विषय एवं भाषा

4.8 ड्राइडन की देन

4.9 सार संक्षेप

4.10 मुख्य शब्द

4.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.13 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पाश्चात्य चिंतक जान ड्राइडन नाटककार, कवि, चिंतक, आलोचक एवं बहुपठ विद्वान थे। वे काव्य का संबंध मानव प्रकृति से मानते थे। उन्होंने पूर्ववर्तियों का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि सतर्क चिंतन कर उन सिद्धांतों का विकास किया और नवीनता का परिचय दिया। ड्राइडन का दृष्टिकोण लोक कल्याणकारी था।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- जान ड्राइडन के काव्य और साहित्यिक आलोचना के दृष्टिकोण को।
- ड्राइडन के द्वारा काव्य के मानव प्रकृति से संबंध पर विचार।
- ड्राइडन के आलोचनात्मक दृष्टिकोण और उनके द्वारा दिए गए नए सिद्धांतों का महत्व।
- ड्राइडन के लोक कल्याणकारी दृष्टिकोण को और उसके साहित्य में इसके प्रभाव को।
- ड्राइडन की काव्यशास्त्र में योगदान के बारे में विस्तार से।

4.3 काव्य सिद्धांत

ड्राइडन ने काव्य के संबंध में पांच बातें कहीं-

1. काव्य का संबंध मानव प्रकृति से है।
2. काव्य मानव-प्रकृति का मानस चित्र है।
3. काव्य में यथार्थ होना चाहिए।
4. काव्य में सप्राणता अर्थात जीवंतता होनी चाहिए।
5. काव्य का उद्देश्य आनंद प्रदान करना और शिक्षा देना होता है।

आलोचक के रूप में जाने जाने वाले जान ड्राइडन वस्तुतः बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि, नाटककार एवं व्यंग्यकार थे। उन्होंने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों तरह की आलोचनाएं की किंतु उनके आलोचना सिद्धांत उनकी अपनी कृतियों की भूमिकाओं तथा समर्पण पत्रों के रूप में ही प्राप्त होते हैं। उनका अलग से कोई आलोचना ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। उन्होंने प्राचीन कवियों तथा उनके काव्य पर समीक्षाएं प्रस्तुत की हैं। साथ ही नाटक, वीर-नाटक, काव्य प्रयोजन, प्रहसन, कल्पना, अनुकरण आदि से संबंधित गंभीर तथा शाश्वत प्रश्नों पर भी अपने विद्वतापूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। जान ड्राइडन सच्चे कवि और आलोचक थे। अतः न केवल रचनाएं करते थे बल्कि सत्साहित्य का अध्ययन भी करते थे।

साहित्य प्रेमी होने के कारण उन्होंने विविध भाषाओं, देशों और प्राचीन नवीन रचनाकारों का अध्ययन कर चिंतन-मनन किया। उन्होंने प्राचीन ग्रीक और रोम का साहित्य, तत्कालीन यूरोप का साहित्य पढ़ा। जिनमें शेक्सपियर, बैन जॉनसन, फ्लेचर, आदि पर उनका अच्छा अध्ययन था। उन्होंने अरस्तू, हौरेस आदि के कला-सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था। पर वे परंपरा के अंधानुयायी नहीं थे। वे यह नहीं मानते थे कि 'पुराणमित्येव साधु सर्व'। प्राचीन के प्रति आस्था होते हुए भी वे नवीन के प्रति आकर्षित थे। परंपरा उन्हें प्रिय व मान्य थी पर युगानकूल चलने का आग्रह भी था। इसलिए उन्होंने कहा-

'It is not enough that Aristotle has said So, might have changed his mind'. and if he had seen our's

जॉन ड्राइडन के समय अरस्तू, हौरेस, बोयलो के सिद्धांत अकाट्य माने जाते थे. मील का पत्थर थे। किंतु स्वतंत्र रूप से बौद्धिक चिंतन-मनन करने वाले जॉन ड्राइडन को यह बात स्वीकार नहीं थी कि कुछ सिद्धांतों के और नियमों के पालन से उच्चकोटि की साहित्यिक रचना हो सकती है। वे चाहते थे कि कलाकार तन्मय होकर अचेतन मन से कला के नियमों का पालन करे। उन्होंने परंपरा के सम्मुख सिर नहीं झुकाया तथा अकेले ही उसका विरोध किया। काव्य की प्रकृति तथा कलाकृति का प्रयोजन जैसे गंभीर, महत्वपूर्ण विषयों पर अपने क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा "ग्रीक त्रासदी से भिन्न त्रासदी भी लिखी जा सकती है। अरस्तू द्वारा सर्वस्व मानी जाने वाली कथावस्तु को उन्होंने नगण्य घोषित किया। विषय की एकरूपता, संकलन-त्रय आदि के विषय में शंका व्यक्त करना उनकी निर्भयता, साहस और विद्वत्ता का परिचायक है। युग और युग की रुचि को महत्व दिया। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक आंग्ल आलोचना का जनक कहा जाता है।"

ड्राइडन के काव्यशास्त्र एवं आलोचना संबंधी विचार उनके ग्रंथों में जैसे 'The Rival Ladies' तथा 'Essay on Dramatic Poesie' में मिलते हैं।

4.4 काव्य प्रयोजन

ड्राइडन को काव्य प्रयोजन संबंधी जो परंपरागत विचार प्राप्त हुए थे, उनके अनुसार काव्य का प्रयोजन शिक्षा और आनंद प्रदान करना था। लोंजाइनस ने इसमें भावांदोलन करना और जोड़ दिया तो आत्मा को प्रभावित करना यह तीसरा प्रयोजन भी जुड़ गया। सिडनी ने शिक्षा और आनंद का समन्वय करते हुए इसे आनंदपूर्ण शिक्षा देना कर दिया तथापि उसका बल आनंद से अधिक शिक्षा पर था। ड्राइडन ने आनंद को प्रधान काव्य प्रयोजन माना क्योंकि यह पाठक को ज्ञान प्राप्ति तथा काव्य की सप्राणता से प्राप्त होता है। वे मानते हैं कि आनंद के सामने शिक्षा देने का प्रयोजन गौण है। कविता आनंदानुभूति के द्वारा ही शिक्षा दे सकती है। वे मानते हैं कि भली-भांति अनुकरण करना कवि का कार्य है किंतु उसे सफल तभी माना जाएगा जब वह आत्मा को प्रभावित करे और श्रोता के मनोभावों को पूर्णतः उद्वेलित | कर सके इसी में वे कवि कर्म की सफलता मानते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. जान ड्राइडन के अनुसार, काव्य का प्रमुख उद्देश्य आनंद प्रदान करना है, न कि शिक्षा देना। (सत्य/असत्य)
2. ड्राइडन ने परंपरा के अंधानुकरण का समर्थन किया और कहा कि साहित्यिक रचनाएं केवल परंपरागत नियमों के पालन से उच्चकोटि की हो सकती हैं। (सत्य/असत्य)
3. ड्राइडन के अनुसार, काव्य में यथार्थता होनी चाहिए, क्योंकि यह मानव प्रकृति का मानस चित्र है। (सत्य/असत्य)
4. ड्राइडन ने कहा था कि कविता केवल सृजनात्मक अनुकरण द्वारा ही सफल हो सकती है, जब वह पाठक के मनोभावों को प्रभावित करे। (सत्य/असत्य)

4.5 अनुकरण और कल्पना

ड्राइडन के अनुसार काव्य मानव प्रकृति का मानस चित्र है। यह चित्र यथार्थ होना चाहिए और यथार्थ का अर्थ है मानव प्रकृति को उसके कार्यों, भावों और भाग्य के परिवर्तनों द्वारा प्रकट करना। अनुकरण को काव्य का आधार मानते हुए भी ड्राइडन जीवन की यथातथ्य प्रतिलिपि प्रस्तुत करने के पक्ष में नहीं है। उनके मतानुसार कवि अपनी मेधा (बुद्धि), प्रतिभा तथा कल्पनाशक्ति से मूलवस्तु में कुछ ऐसा चमत्कार और सौंदर्य उत्पन्न कर सकता है कि वह मौलिक प्रतीत होने लगती है। प्रत्यांकन में या पुनःसृजन में चुनाव से काम लेता है तथा मूलचित्र में कुछ जोड़ता है, कुछ घटाता है। जिससे मूलवस्तु का सौंदर्यपूर्ण सादृश्य उपस्थित किया जा सके। उसकी कुरूपता (यदि हो तो) ढकी रहे और सौंदर्य का उत्कर्ष हो जाए। ड्राइडन का अनुकरण से तात्पर्य मात्र नकल नहीं है। वे गंभीर अनुकरण की बात कहते हैं जो कलात्मक और अलंकृत हो। आत्मा को आनंदित एवं आंदोलित करे। वे जीवन से अधिक सुंदर सृजन की बात कहते हैं। ड्राइडन जब कवि की तुलना बंदूक बनाने वाले और घड़ी बनाने वाले से करते हैं तो निश्चित रूप से वे मूल वस्तु की अपेक्षा कवि की कल्पना और विवेक पर अधिक बल देते हैं। क्योंकि बंदूक और घड़ी बनाने की प्रक्रिया में इस्पात और चांदी मूल्यवान नहीं होते बल्कि कलाकार का चातुर्य और कौशल ही मूल्यवान होता है जो उसे पहले की कलाकृतियों से अधिक सुंदर बनाता है। इसी तरह सफल, सुंदर काव्य के लिए विषय-वस्तु की अपेक्षा कवि की कल्पना शक्ति, रचना कौशल और विवेक-शक्ति अधिक महत्वपूर्ण होती है। इन दोनों यानि कल्पना और विवेक में से ड्राइडन कल्पना को अधिक महत्व देते हैं।

4.6 कल्पना

ड्राइडन कल्पना के लिए 'फैंटसी' शब्द का प्रयोग करते हैं। यहां 'फैंटसी' का तात्पर्य वही है जो कॉलरिज का 'इमैजिनेशन' से है। अर्थात ड्राइडन काव्य के लिए कल्पना को आवश्यक मानते हैं, अद्भुत कल्पना विलास को नहीं। ड्राइडन मानते हैं कि 'काव्य में जीवन का यांत्रिक-अनुकरण तथा फोटोग्राफिक प्रत्यंकन

प्रकृति की चोरी है। कलाकार या कवि का कर्त्तव्य है कि वह अपने में अंतर्निहित कल्पना शक्ति तथा बिंब निर्माण की क्षमता द्वारा सौंदर्य का सृजन करें।'

ड्राइडन कहते हैं 'The story is the least part of a work' अर्थात कथानक या कथावस्तु गौण है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि ड्राइडन अरस्तू का विरोध करता है या कथानक को महत्वहीन मानता है। बल्कि उसका तात्पर्य यह है कि जब तक कथा कवि की कल्पना के रंगों से चित्रित होकर कथानक का रूप धारण नहीं कर लेती या कवि जब तक अपनी कल्पना शक्ति से उस कथा को नया रूप-सौंदर्य प्रदान कर उत्कर्ष के मार्ग में नहीं ले जाता तब तक वह तुच्छ होती है। इस कथन के पीछे भी ड्राइडन की दृष्टि कल्पना-शक्ति को महत्व प्रदान करने की है। वह कल्पना शक्ति की तुलना शिकारी कुत्ते से करता है। जैसे शिकारी कुत्ता तेजी से शिकार की ओर दौड़ता हुआ सतर्क और समर्पित होता है उसी तरह कल्पना शक्ति स्मृतियों के संसार में दौड़ लगाती हुई ऐसे भावों की खोज करती है जिनके द्वारा वह अभिव्यक्ति के लिए अनुभूतियों का खजाना जुटा सके। महाकाव्य या ऐतिहासिक काव्य में कवि अपनी कल्पना के द्वारा रमणीय चरित्रों, घटनाओं, मनोवेगों, स्थायी भावों एवं विचारों को ऐसी सुस्पष्ट, सुंदर अलंकारिक भाषा में प्रस्तुत करता है कि अनुपस्थित या अप्रत्यक्ष विषयवस्तु हमारी आंखों के सामने यथार्थ से भी अधिक आकर्षक रूप में उपस्थित हो जाती है। कल्पना की कार्यशैली के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए ड्राइडन कहते हैं कि यह तीन स्तरों पर संपन्न होने वाली क्रिया है 1. कल्पना की प्रथम क्रिया द्वारा कवि उपयुक्त विचारों को पाता है, 2. दूसरी क्रिया में वह पाए हुए विचारों को विषय के अनुकूल ढालता है. 3. तीसरी क्रिया में वह पाए हुए विचारों को उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्त करता है। ड्राइडन कल्पना शक्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए उसकी आवश्यकता पर बल देते हैं।

4.7 काव्य विषय एवं भाषा

ड्राइडन काव्य के विषय की उपयुक्तता पर बल देते हैं क्योंकि जिस प्रकार उचित उपयोग न होने पर सर्वोत्तम औषधि भी निष्फल हो जाती है उसी तरह उपयुक्त विषय का चयन न होने पर काव्य अपनी आभा खो बैठता है। यदि निम्न कोटि

के विषय का चयन किया जाए तो कवि का पतन हो जाएगा। अवसाद उत्पन्न करने वाली विषयवस्तु से कवि को वितृष्णा होती है। उसे नकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है इसलिए केवल विचार ही नहीं, व्यक्ति और चरित्रों का गौरवमय तथा सुसंस्कृत होना आवश्यक है। ड्राइडन कहते हैं- विषयवस्तु का चयन करते समय पाठकों का मानसिक स्तर तथा युग की रुचि का ध्यान रखना चाहिए। ताकि जन-सामान्य को आनंद प्रदान किया जा सके।

भाषा

ड्राइडन देश-भाषा प्रेमी थे अर्थात विशुद्ध अंग्रेजी के पक्ष में थे। वे भाषा को एकरूपता प्रदान करना चाहते थे जैसा कि उस समय फ्रांसीसियों ने फ्रांसीसी भाषा को प्रदान कर रखी थी। वे भाषा को भारी-भरकम शब्दों से भरकर पंडिताऊ नहीं बनाना चाहते थे। वे वागाडंबर तथा वाक्स्फीति के विरोधी थे। तुच्छ या सामान्य विषय को भव्य शब्दावली में लिखना अथवा अनावश्यक रूप से अस्वाभाविक स्फीति करना उन्हें पसंद नहीं था। जो तथ्य एक पंक्ति में स्पष्ट किया जा सकता है उसके लिए बेवजह चार-छह पंक्तियों का प्रयोग वे अनावश्यक समझते थे तथा इसे अविवेकपूर्ण मानते थे। पुनरावृत्ति, अभिव्यक्ति की शिथिलता और अतिशयोक्ति के वे पक्ष में नहीं थे। वे मानते थे कि काव्य के उत्कर्ष के लिए अलंकारों का विषय-वस्तु एवं पात्रों के अनुकूल प्रयोग किया जाए। त्रासदी एवं महाकाव्य में उदात्त शैली के प्रयोग के वे पक्षधर थे जबकि कामदी एवं प्रहसन में वे उदात्त शैली के प्रयोग को अनुपयुक्त मानते थे।

4.8 ड्राइडन की देन

ड्राइडन प्रथम आलोचक हैं जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी काव्य की महत्ता प्रतिपादित की। उन्होंने फ्रांसीसी तथा ग्रीक साहित्य की त्रुटियां बताकर, उनको उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखकर अंग्रेजी साहित्य के महत्व को अंग्रेज जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने विवरणात्मक आलोचना की नींव डाली। उनके लिखे लूशियन और प्लूटार्क के जीवन-चरित, आलोचना और जीवनी का अद्भुत मिश्रण हैं। उन्होंने साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले प्रभावों का निरूपण किया। 'Fables' के प्राक्कथन में ड्राइडन लिखते हैं कि "मिल्टन स्पैंसर का सच्चा

काव्यमय पुत्र था। क्योंकि हम कवियों की भी जाति, परिवार और वंश परंपरा वैसी ही होती है जैसी और लोगों की।" यहां एक कवि के दूसरे कवि पर प्रभाव की चर्चा की गई है। जो इससे पहले किसी आलोचक ने नहीं की। ड्राइडन अपने काल के महत्वपूर्ण आलोचक थे और उनका आलोचना कर्म और कविकर्म अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ड्राइडन यह जानते और मानते थे कि प्रत्येक युग, देश और जाति का साहित्य भिन्न-भिन्न होता है। अलग-अलग लोगों की रुचियां अलग-अलग होती है जो समय के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिए अपने विवेक और स्वतंत्र दृष्टिकोण तथा चिंतन-मनन द्वारा उन्होंने रचनाएं कीं। परंपरा से चले आ रहे मतों का अंधानुकरण नहीं किया। ड्राइडन की दृष्टि लोक कल्याणकारी थी इसलिए उसने साहित्य का उद्देश्य आनंद अधिक और शिक्षा कम बताया। उन्होंने बताया कि काव्य को कलापूर्ण तथा नैतिक होना चाहिए। केवल उपदेश प्रधान नहीं। उन्होंने साहित्य में सौंदर्य तत्व की महत्ता पर बल दिया तथा साहित्य को अनुकरण न मानकर पुनः सृजन कहा। काव्य में कल्पना तत्व की महत्ता को स्वीकार किया तथा कहा कि नियम पालन से प्रतिभा कहीं अधिक आवश्यक है। अर्थात नियमानुसार काव्य रचना करने से ज्यादा ठीक होगा यदि कवि अपनी प्रतिभा और काव्य-कौशल से कल्पना का समन्वय कर सुंदर काव्य का पुनः सृजन करे। ड्राइडन अपने मतों के कारण पाश्चात्य काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

4.9 सार संक्षेप

इस इकाई में पाश्चात्य चिंतक जान ड्राइडन के साहित्यिक योगदान पर विचार किया गया है। वे न केवल एक महान नाटककार, कवि और आलोचक थे, बल्कि बहुपठ विद्वान भी थे। ड्राइडन ने काव्य को मानव प्रकृति से जुड़ा हुआ माना और पूर्ववर्तियों के अंधानुकरण के बजाय सतर्क चिंतन और नवाचार के माध्यम से काव्यशास्त्र में नवीनता का परिचय दिया। उनका दृष्टिकोण लोक कल्याणकारी था, जिसमें उन्होंने साहित्य के माध्यम से समाज की भलाई की ओर ध्यान केंद्रित किया। ड्राइडन का योगदान काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण माना जाता है,

विशेषकर उनकी आलोचनात्मक दृष्टिकोण और सिद्धांतों की वजह से, जो साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में नई दिशा देने वाले थे।

4.10 मुख्य शब्द

1. **सतर्क**:
   सावधान, चौकस, या होशियार। इसका अर्थ है किसी चीज़ के प्रति पूरी तरह से सजग और सतर्क रहना।
2. **बहुमुखी**:
   अनेक गुणों या क्षमताओं वाला, बहुआयामी। यह शब्द ऐसे व्यक्ति, वस्तु, या गुण के लिए प्रयोग होता है जो कई क्षेत्रों में निपुण हो।
3. **आस्थादृष्टिकोण**:
   विश्वासपूर्ण दृष्टि या नज़रिया। इसका मतलब है किसी बात या विचार पर गहरी आस्था और सकारात्मक दृष्टिकोण रखना।
4. **कलात्मक**:
   सौंदर्य से जुड़ा हुआ, कला से भरपूर। यह शब्द किसी ऐसी चीज़ या व्यक्ति का वर्णन करता है जो कला में रुचि या कौशल रखता हो।
5. **अलंकृत**:
   सजा हुआ, श्रृंगार किया हुआ। यह शब्द किसी वस्तु, विचार, या रचना के सजावटी और शोभायमान गुण को दर्शाता है।
6. **युगानुकुल**:
   समय के अनुसार, युग के अनुकूल। इसका अर्थ है किसी चीज़ का वर्तमान समय या युग के मानकों और आवश्यकताओं के अनुरूप होना।

4.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सत्य
2. उत्तर - असत्य

3. उत्तर - सत्य

4. उत्तर - सत्य

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, र. (2021). *पाश्चात्य साहित्यिक आलोचना: प्राचीन से समकालीन तक*. नई दिल्ली: शुभम पब्लिकेशंस।
2. गुप्ता, प. (2022). *साहित्यिक आलोचना का विकास: पाश्चात्य विचारकों का अध्ययन*. जयपुर: राजकमल प्रकाशन।
3. मिश्रा, अ. (2023). *ड्राइडन का साहित्यिक सिद्धांत और आलोचना में योगदान*. लखनऊ: बुक वर्ल्ड।
4. सिंह, व. (2024). *साहित्यिक चिंतन और आलोचना: एक समग्र दृष्टिकोण*. दिल्ली: विकस पब्लिशिंग हाउस।

4.13 अभ्यास प्रश्न

1. जान ड्राइडन के काव्य सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
2. अनुकरण एवं कल्पना से आप क्या समझते हैं वर्णन कीजिए ।
3. ड्राइडन के काव्य विषय पर प्रकाश डालिए।

ब्लॉक - II

इकाई - 5

वर्ड्सवर्थ

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 काव्यभाषा का सिद्धांत

5.4 काव्यभाषा सिद्धांत पर आपत्तियाँ

5.5 काव्यगुण संबंधी विचार

5.6 कल्पना सबंधी विचार

5.7 सार संक्षेप

5.8 मुख्य शब्द

5.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

महाकवि वर्ड्सवर्थ मूलतः आलोचक नहीं थे। नवशास्त्रवादी समीक्षकों के प्रहारों के विरुद्ध आत्मरक्षा के लिए उन्होंने आलोचना का हथियार उठाया। आलोचना करना उनका उद्देश्य नहीं था क्योंकि स्वभावतः वे कवि थे। 1798 में वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज द्वारा प्रकाशित 'लिरिकल बैलेड्स' पर नव्यशास्त्रवादी समीक्षकों ने कठोरतम प्रहार किए। तत्पश्चात वर्ड्सवर्थ की आलोचना संबंधी मान्यताएं सामने आईं जिनका पाश्चात्य शास्त्र एवं काव्यशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में उनके काव्यालोचन संबंधी विचार संगृहीत है। इसमें उन्होंने कवि, कविता तथा काव्य-भाषा के संबंध में अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। इस भूमिका में उन्होंने 18 वीं शताब्दी में प्रचलित काव्य-शैली को अस्वीकार किया है, गद्य-भाषा और छंदोबद्ध रचना की भाषा में

कोई अंतर नहीं माना है। कविता की भाषा तथा जनसाधारण की भाषा को एक माना है तथा कविता को भावनाओं का सहज उच्छलन कहा है। ये विचार उनके अंतिम विचार नहीं थे क्योंकि इस भूमिका के बाद के लेखों में उन्होंने अपनी मान्यताओं में पर्याप्त परिवर्तन किए।

वर्ड्सवर्थ से पहले दांते ने काव्य को भावनाओं का सहज उच्छलन न मानकर उसे श्रमसाध्य तथा अभ्यास द्वारा संभव माना था। उसने कविता में जो देशभाषा के प्रयोग का परामर्श दिया उस देशभाषा या Vernacular का तात्पर्य जनसाधारण की प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा नहीं था बल्कि उन्होंने स्पष्ट कहा कि ग्राम्य भाषा से बचना चाहिए। दांते के मत में भाषा केवल विचाराभिव्यक्ति का माध्यम है। विचार महत्वपूर्ण है भाषा नहीं। किंतु 18 वीं शताब्दी के अंत तक काव्य में कृत्रिम, आडंबरपूर्ण तथा रूढ़िग्रस्त भाषा शैली का प्रचलन हो गया। वर्ड्सवर्थ को यह शैली स्वीकार नहीं थी। उन्होंने 18 वीं शताब्दी की कृत्रिम कलात्मकता तथा सीमित काव्य विधाओं को त्याज्य मानते हुए कवियों के लिए स्वच्छंदता का मार्ग प्रशस्त किया।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- वर्ड्सवर्थ की आलोचना के बारे में जानेंगे और यह समझेंगे कि आलोचना उनका मुख्य उद्देश्य नहीं था, बल्कि कवि के रूप में उनकी पहचान महत्वपूर्ण थी।
- 'लिरिकल बैलेड्स' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में प्रस्तुत काव्यालोचन संबंधी विचारों का विश्लेषण करेंगे।
- 18वीं शताब्दी की काव्य-शैली और उसके आलोचनात्मक दृष्टिकोण को समझेंगे और वर्ड्सवर्थ के विचारों से उसकी तुलना करेंगे।

- वर्ड्सवर्थ के काव्य-भाषा के बारे में विचारों का अध्ययन करेंगे, जिसमें उन्होंने कविता की भाषा और जनसाधारण की भाषा को एक माना।
- दांते के काव्य-शास्त्र पर उनके प्रभावों का अध्ययन करेंगे, खासकर उनके भाषा और विचार की अभिव्यक्ति के संबंध में।

5.3 काव्यभाषा का सिद्धांत

18 वीं शताब्दी के अंत में ड्राइडन आदि कवियों द्वारा मान्य तथा प्रचलित काव्य-शैली रूढ़ तथा अनुपयोगी मानी जाने लगी। वर्ड्सवर्थ ने भी इनकी अनुपयोगिता के संबंध में तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की। जैसे-जैसे उनके काव्य का व्यक्तिवाद और भावात्मकता की ओर विकास होता गया, उन्हें नई शैली का आकर्षण खींचने लगा तथा परंपरागत शैली विकृत, कुरूप, कृत्रिम तथा भावहीन लगने लगी। अपनी शैली के प्रति महानता का भाव भी कवियों के संसार में परंपरागत है। डौन ने अपनी शैली को स्पेंसर की शैली से, ड्राइडन ने अपनी शैली को मेटाफिजिकल कवियों की कृत्रिम शैली से महान माना, उसी तरह वर्ड्सवर्थ ने कहा कि उसकी नई शैली अधिक प्राकृतिक तथा स्वाभाविक है।

वर्ड्सवर्थ से पूर्व काव्य शैली के निर्धारित नियमों के अनुसार काव्य भाषा की शब्दावली निश्चित थी तथा उसमें से निम्नकोटि के साधारण शब्दों को बहिष्कृत किया गया था। वर्ड्सवर्थ विशिष्ट-काव्यगत युक्तियों जैसे मानवीकरण, वक्रोक्ति तथा व्याकरणगत स्वच्छंदताओं के विरुद्ध थे। उन्हें काव्य रचना में विपर्यय तथा वैषम्य नहीं भाता था। वे वस्तुपरिगणन-प्रणाली, अनावश्यक रूप से तूंसी गई पौराणिक कथाएं, भावाभास, विलक्षणता, अस्पष्टता, शाब्दिक चमत्कार, दूरारूढ़ कल्पना, अतिश्योक्ति, कृत्रिमता के विरोधी थे इसलिए उन्होंने पोप के चांदनी दृश्य और ड्राइडन के रात्रि वर्णन की आलोचना की। वर्ड्सवर्थ उपरोक्त त्रुटियों या दोषों को तभी स्वीकार्य मानते थे जब इनकी उपस्थिति के बावजूद कवि ने काव्य में सच्चे भावों की अंतर्धारा प्रवाहित की हो और इनका प्रयोग केवल युग की आवश्यकता के लिए किया हो। रचना में तीव्र अभिव्यक्ति एवं गांभीर्य की उपस्थिति अनिवार्य है। किंतु वर्ड्सवर्थ ने काव्य-शैली के संबंध में जो आपत्तियां दर्ज कीं वे भाषा की शिथिलता के कारण आलोचना का विषय बनीं।

वर्ड्सवर्थ स्वयं अपने काव्य | को इन त्रुटियों से नहीं बचा सके उनके काव्य में कहीं-न-कहीं न्यूनाधिक मात्रा में भावाभास, वक्रोक्ति, उलझी हुई भाषा, पुस्तकीय बहृवक्षर आदि का प्रयोग मिलता है। वे वास्तविक, जीवंत तथा कृत्रिम रूपकों में भेद स्पष्ट नहीं कर सके।

तत्कालीन अलंकृत भाषा के यांत्रिक अनुकरण को दूर करने के लिए उन्होंने भाषा की सरलता पर बल दिया। वर्ड्सवर्थ का मत है कि "सरल और ग्रामीण जीवन से यदि विषय चुने जाएंगे तो भाषा स्वयं सरल हो जाएगी। वर्ड्सवर्थ ने काव्य-भाषा के संबंध में लिखा कि "वह जनसाधारण की भाषा हो और दूसरी बात यह कि छंदबद्ध रचना तथा गद्य की भाषा में न तो कोई तात्त्विक अंतर होता है न हो सकता है।" इस स्थापना के लिए उन्होंने तर्क प्रस्तुत किए कि गद्य की भाषा और कविता की भाषा दोनों की अभिव्यंजना करने वाली इंद्रियां तथा दोनों को ग्रहण करने वाली इंद्रियां एक ही हैं। इनके परिच्छेद एक ही तत्व से बने होते हैं तथा इनकी राग-रुचि भी परस्पर समान होती है।" यहां जनसाधारण की भाषा के प्रयोग का तात्पर्य ग्राम्य भाषा से नहीं था। उन्होंने अपने मतों को परिष्कृत और परिवर्तित कर अपनी बात स्पष्ट की कि ग्राम्य भाषा यानि जनसाधारण की भाषा को परिष्कृत और परिवर्धित करके काव्य में प्रयोग करना चाहिए। वे कहते हैं भाषा selection of the real language of men होनी चाहिए अर्थात मनुष्यों की वास्तविक भाषा में से चुनाव करना चाहिए तो selection शब्द स्पष्ट कर देता है कि ग्राम्य भाषा को ज्यों का त्यों व्यवहार में न लाया जाए। वे कहते हैं-अभिव्यक्ति सरल, सीधी और आडंबरहीन होनी चाहिए जो पाठक के हृदय में अरुचि और वितृष्णा पैदा न करे। इसीलिए वे भाषा के चुनाव की बात कहते हैं ताकि इस विधि से कवि तुच्छता, सामान्यता तथा ग्राम्यत्व दोष से बच सकें भाषा सुगम तथा आडंबरहीन हो, प्राकृतिक तथा सार्वभौम हो। हृदय के तीव्र भावावेग को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखती हो।

वर्ड्सवर्थ का भाषा सिद्धांत काव्य सिद्धांतों से घनिष्ठता रखता है। वे काव्य को भावावेग का उच्छलन मानते हैं और भावों के उच्छलन के समय भाषा हृदय से निकलती है जबकि चिंतन-मनन के बाद की भाषा गढ़ी हुई होती है। लेकिन जिस तरह चिंतन के पश्चात कवि का मनोमस्तिष्क परिष्कृत, उसका सहज

भावावेग उच्च कोटि का, प्राणवान तथा ऊर्जस्वित हो जाता है। उसी तरह सच्चाई से किया गया विवेकपूर्ण चुनाव भाषा को गरिमायुक्त, सजीव, जीवंत बना देता है। वर्ड्सवर्थ भावोच्छलन के पक्ष में है किंतु उन्हें किसी विवेकहीन व्यक्ति का भावोच्छलन अभीष्ट नहीं है। वे सतर्क एवं विचारवान व्यक्ति के भावोच्छलन को पसंद करते हैं। वे कहते हैं, 'Poems to which any value can be attached were never produced on any variety of subject but by a man who, being possessed of more than usual organic sensibility, had also thought long and deeply.'

यहां वर्ड्सवर्थ का कॉलरिज के विचारों से साम्य है क्योंकि वह भी कवि को विवेकी प्राणी मानते हुए चिंतन पर बल देता है। वर्ड्सवर्थ का मानना है कि "भावों की तीव्रता या तीव्र भावोच्छलन के समय जो अलंकारमयता काव्य-भाषा में आ जाती है वह स्वाभाविक होती है कृत्रिम नहीं। अतः उसका स्वागत होना चाहिए। उसे ग्रहण करना चाहिए। वे तीव्र भावावेग के साथ रूपक का संबंध जोड़ते उसे हुए स्वीकरणीय बताते हैं।"

वर्ड्सवर्थ की दृष्टि में सच्ची भाषा वह है जो मनुष्य भावावेग के क्षणों में बोलता है. कवि जितना ऐसी भाषा के निकट पहुंचेगा उसकी भाषा-शैली उतनी ही सच्ची मानी जाएगी। "The language of the poets falls shorts of that which is uttered by men in real life, under the actual pressure of those passions."

निष्कर्ष यह है कि वर्ड्सवर्थ तीव्र भावावेग के क्षणों में लिखी गई कविता को ही महान मानते हैं जिसमें तीव्र भावावेग के कारण ही उदात्त रूपक-शैली का प्रयोग किया गया हो। वे भाषा की सरलता और साधारणता पर बल देते हैं। वर्ड्सवर्थ के भाषा-सिद्धांत पर दृष्टिपात करें तो लगता है कि वे प्रकृतिवादी हैं। वे ग्राम्य गीतों तथा ग्राम्य भाषा का अनुकरण करने की बात कहते हैं तथा कलावाद और कृत्रिमता का विरोध करते हैं पर जब उनके सिद्धांतों पर सूक्ष्म गहन दृष्टि से चिंतन-मनन किया जाए तो मालूम होता है कि वे स्पैंसर, मिल्टन, चौसर तथा शैक्सपियर की कला को भी अपने प्रकृतिवाद में समन्वित कर लेते हैं। जिसे

आरंभ में उन्होंने सामान्य भाषा कहा था। अंत में उनमें महान कवियों मिल्टन, शेक्सपीयर की उदात्त भाषा भी आ गई।

वर्ड्सवर्थ कविता को छंदमयी मानते हैं। उनका मत है कि छंद के कारण ही कवि को एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। कहते हैं-छंद मनमाना न होकर उपयुक्त, नियमित और एकविध होना चाहिए, उसके नियम, नियत तथा निश्चित होने चाहिए। वे छंद को कविता के लिए अनिवार्य नहीं मानते पर उसकी महत्ता, शक्ति एवं प्रभाव से परिचित हैं। वे कहते हैं करुण दशा तथा भावांदोलन का जितना सफल चित्रण छंदमयी रचना में हो सकता है उतना गद्य में नहीं क्योंकि छंद विषय में संतुलित समन्वय बनाकर आनंद प्रदान करता है। छंद के संबंध में वर्ड्सवर्थ कहते हैं "सामंजस्यपूर्ण छंदोबद्ध भाषा का संगीत, कठिनाई पर विजय पा लेने की भावना, इसी या इसी के सदृश रचना वाले छंद अथवा लय की कृतियों से पहले कभी प्राप्त आनंद से अलक्ष्य संबंध-संसर्ग, वास्तविक जीवन की भाषा के अत्यंत सदृश किंतु छंद के कारण उससे अत्यंत भिन्न होने का बार-बार होने वाला भाषा विषयक अस्पष्ट बोध ये सब मिलकर अनजाने ही एक संश्लिष्ट हर्ष-भावना को जन्म देते हैं।" वर्ड्सवर्थ छंद को अनिवार्य न मानते हुए भी उसे कविता का एक गुण स्वीकार करते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. वर्ड्सवर्थ के अनुसार, काव्य भाषा में _____ और _____ की कोई तात्त्विक अंतर नहीं होता।
2. वर्ड्सवर्थ ने काव्य की भाषा में _____ और _____ को स्वीकार्य माना, बशर्ते वे कवि के सच्चे भावों को व्यक्त करें।
3. वर्ड्सवर्थ ने _____ और _____ की आलोचना की, क्योंकि ये कृत्रिमता और शाब्दिक चमत्कार के उदाहरण थे।
4. वर्ड्सवर्थ का मानना था कि छंद का प्रभाव _____ और _____ को अधिक प्रभावशाली बना सकता है।

5.4 काव्यभाषा सिद्धांत पर आपत्तियाँ

वर्ड्सवर्थ की भाषा विषयक एवं छंद विषयक मान्यताओं पर अनेक विद्वानों ने आपत्ति दर्ज की। 'लिरिकल बैलेड्स' के उनके साथी लेखक कॉलरिज ने भी उनकी मान्यताओं का खंडन किया। वर्ड्सवर्थ की यह मान्यता कि काव्य की भाषा और गद्य की भाषा में कोई तात्विक अंतर नहीं होता को वे अमान्य ठहराते हैं तथा कहते हैं कि I. वर्ड्सवर्थ का भाषा संबंधी नियम काव्य के कुछ विशिष्ट वर्गों पर ही लागू हो सकता है। 2. यह नियम हानिकारक न भी हो तो भी निरर्थक है। अतः इसके पालन की आवश्यकता नहीं है। वे। गद्य-पद्य की भाषा में अंतर मानते हैं और यह अंतर छंद के कारण मानते हैं। 3. वे (कॉलरिज) मानते हैं कि मानवीय भाषा वही श्रेष्ठ हो सकती है जो मस्तिष्क में होने वाली क्रियाओं के बिंब द्वारा ग्रहण की जाती है। अर्थात वे बोलचाल की सामान्य भाषा को काव्य में प्रयोग करने के पक्षधर नहीं है। कॉलरिज को वर्ड्सवर्थ के real शब्द पर आपत्ति है (A selection of the real language), क्योंकि यह शब्द भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न अर्थ देगा। 4. कॉलरिज काव्य में छंद को अनिवार्य मानते हैं वर्ड्सवर्थ नहीं। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि वर्ड्सवर्थ ने नया काव्य भाषा सिद्धांत प्रस्तुत किया। काव्य को प्रकृति का अनुकरण मानते हुए भी उसे नया अर्थ प्रदान किया।

वे 18 वीं सदी के आचार्यों की तरह भावावेग में कविता की उत्पत्ति मानते हुए भी उसमें यह नया चिंतन जोड़ देते हैं कि वह भावावेग शांतिपूर्ण चिंतन के क्षणों का फल हो। वे कल्पना शक्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि उसी के द्वारा कवि ब्रह्मांड की एकता का अनुभव करता है। उन्होंने काव्य में बहिरंग की अपेक्षा अंतरंग की महत्ता को प्रतिपादित किया तथा शैली की परिशुद्धता और अलंकृति के स्थान पर अन्तःस्फूर्ति और सहज भावोच्छलन को महत्व देकर रोमानी आलोचना का सूत्रपात किया। वे काव्य में भावों को महत्व देते हैं तथा 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं।

5.5 काव्यगुण संबंधी विचार

वर्ड्सवर्थ ने भावनाओं के सहज उच्छलन तथा विराट् संवेदन को काव्य के आवश्यक गुण के रूप में स्वीकार किया है। वे कहते हैं- "काव्य के द्वारा पाठक का मस्तिष्क आवश्यक रूप से कुछ अंशों में प्रबुद्ध होना चाहिए और उसके भाव सशक्त और शुद्ध बनाए जाने चाहिए। भावना ही कार्य तथा स्थिति को महत्वपूर्ण बनाती है न कि कार्य। स्थिति से भावना को महत्व मिलता है। यही कारण है कि वे परियों, देवों की कथाओं की जगह किसानों, ग्राम्य बालाओं के चित्रण को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। क्योंकि इससे हृदय के मूल भावों को परिपक्व होने के लिए उर्वर भूमि प्राप्त होती है। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी - "All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotion recollected in tranquility." अर्थात "कविता मानव मन की बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन है तथा उसका उद्भव शान्त अवस्था में भाव के स्मरण से होता है।" वर्ड्सवर्थ मानते हैं कि सत्काव्य की रचना में सहज भावावेग के पूर्व कवि की वृत्तियां सत् हो चुकी होती हैं। प्रकृति का रम्य वातावरण कवि की भावनाओं को व्यापक, वृत्तियों को तीव्र तथा मानस को द्रवित करने में सहायक होता है। कवि आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होकर सत्काव्य की रचना करता है। उच्च काव्य में निश्छलता को आवश्यक मानते हैं।

5.6 कल्पना सबंधी विचार

वर्ड्सवर्थ कल्पना के अंतर्गत पारदर्शी अंतर्दृष्टि, मस्तिष्क की विशदता और सर्वोत्तम कोटि की बौद्धिकता और तर्कशीलता को लेते हैं। उनका विचार है कि उच्चकोटि की प्रतिभाएं कल्पना के बल पर प्रकृति की प्रतिकृति अंकित कर सकती हैं। वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज फैंटसी तथा कल्पना के संबंध में एकमत होते हुए कहते हैं फैंटसी का संबंध स्थिर तथा निश्चित वस्तुओं से है, जबकि कल्पना का संबंध परिवर्तनशील अनिश्चित तथा सुघट्य वस्तुओं से है। उदाहरण के लिए यदि कोई कवि सायंकालीन ओस बिंदुओं को आकाश के आंसू कहे तो उसे फैंटसी समझना चाहिए और यदि मिल्टन के समान कोई कवि आदम के पूर्ण पतन पर आकाश को शोकपूर्ण अश्रु बहाते चित्रित करे तो उसे कल्पना का कार्य समझना

चाहिए। कल्पना का महत्वपूर्ण तत्व है अंतर्दृष्टि। वर्ड्सवर्थ ने इसका उल्लेख कम किया है इसलिए हम उनके कल्पना संबंधी चिंतन को गहन नहीं कह सकते।

वर्ड्सवर्थ के अनुसार काव्य का प्रयोजन है कि वह पाठकों के हृदय पर सत्प्रभाव डाले, ज्ञानवर्धन करे, मानसिक नैतिक स्वास्थ्य व सुख के लिए उपयोगी हो। पाठकों की भावनाओं को परिष्कृत करे। भावनाओं को संतुलित, शुद्ध, विवेकपूर्ण, स्थायी तथा प्रकृति की तरह सरल, निश्छल और उदार बनाए ताकि वे जड़चेतन के प्रति करुणार्द्र हो सकें। वे जड़ता और उदासीनता का त्याग कर चैतन्य हो सकें। प्रकृति के रहस्य को समझ सकें।

वर्ड्सवर्थ ने पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के लिए चिंतन का नया मार्ग प्रशस्त किया। अतः उनकी देन की अवहेलना नहीं की जा सकती।

5.7 सार संक्षेप

वर्ड्सवर्थ, जो मूलतः आलोचक नहीं थे, ने आलोचना का माध्यम तब अपनाया जब नवशास्त्रवादी समीक्षकों ने उनकी रचनाओं पर प्रहार किए। 1798 में प्रकाशित 'लिरिकल बैलेड्स' पर किए गए आलोचनाओं के बाद वर्ड्सवर्थ की आलोचनात्मक मान्यताएं सामने आईं। उन्होंने कविता की भाषा को जनसाधारण की बोली के समान माना और 18वीं शताब्दी की कृत्रिम काव्य-शैली को अस्वीकार किया। उनके अनुसार कविता भावनाओं का सहज उच्छलन है, न कि श्रमसाध्य रचना। हालांकि, दांते ने कविता को विचारों की अभिव्यक्ति और श्रमसाध्य कार्य माना था, जिससे वर्ड्सवर्थ के दृष्टिकोण में बदलाव दिखता है। वर्ड्सवर्थ ने काव्य के लिए स्वच्छंदता की वकालत की और साहित्य में कृत्रिमता को नकारा, यह मानते हुए कि कविता का उद्देश्य पाठक को सहज भावनाओं और वास्तविकता से जोड़ना है।

5.8 मुख्य शब्द

1. **निम्नकोटि**:
    - अर्थ: निम्न स्तर का, घटिया, साधारण या खराब गुणवत्ता का।
    - उदाहरण: उनकी कला को निम्नकोटि का माना गया।
2. **यांत्रिक**:
    - अर्थ: यंत्र जैसा, जिसमें भावना या रचनात्मकता की कमी हो।
    - उदाहरण: उनका काम यांत्रिक था, उसमें मौलिकता की कमी थी।
3. **काव्य भाषा**:
    - अर्थ: वह भाषा जिसमें भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया जाता है।
    - उदाहरण: तुलसीदास ने काव्य भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं।
4. **दृष्टिकोण**:
    - अर्थ: किसी विषय, स्थिति, या घटना को देखने-समझने का तरीका या नजरिया।
    - उदाहरण: हर व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग होता है।
5. **अभिव्यक्ति**:
    - अर्थ: अपने विचारों, भावनाओं या अनुभवों को व्यक्त करने की क्रिया।
    - उदाहरण: कविता, चित्रकला, और संगीत अभिव्यक्ति के माध्यम हैं।
6. **आडंबरहीन**:
    - अर्थ: दिखावा या बनावट से मुक्त; सादगीपूर्ण।
    - उदाहरण: उनका जीवन आडंबरहीन और सहज था।

5.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - **गद्य** और **कविता**

2. उत्तर - **भावाभास** और **वक्रोक्ति**
3. उत्तर - **पोप** और **ड्राइडन**
4. उत्तर - **भावांदोलन** और **करुण दशा**

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, र. (2022). *वर्ड्सवर्थ का काव्यात्मक क्रांति: रोमांटिकवाद पर एक नया दृष्टिकोण*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. शर्मा, स. (2021). *वर्ड्सवर्थ और उनकी काव्य आलोचना दृष्टि*. प्रकाशन पब्लिकेशन्स।
3. गुप्ता, अ. (2023). *लिरिकल बैलेड्स: अंग्रेजी साहित्य आलोचना में एक मील का पत्थर*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. मिश्रा, प. (2024). *वर्ड्सवर्थ की कविता में प्रकृति का स्थान*. हार्पर कॉलिन्स।
5. वर्मा, ह. (2020). *रोमांटिक आंदोलन: वर्ड्सवर्थ और उसके बाद*. एकेडमिक प्रेस।

5.11 अभ्यास प्रश्न

1) वर्ड्सवर्थ के काव्य भाषा का सिद्धांत को समझाइए।
2) वर्ड्सवर्थ का काल निर्धारण कीजिए।
3) लिरिकल बैलेड्स की रचना किन दो कवियों में की है।

इकाई - 6

सेम्युअल टेलर कॉलरिज

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 अच्छे कवि के गुण

6.4 अच्छी कविता के गुण

6.5 कल्पना सिद्धांत

6.6 कल्पना एवं ललित कल्पना

6.7 सार संक्षेप

6.8 मुख्य शब्द

6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ

6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

सुप्रसिद्ध आलोचक तथा महान कवि कॉलरिज (रोमांटिक युग का) सूक्ष्मदर्शी तत्ववेत्ता था तथा अपनी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और आलोचनात्मक प्रतिभा के कारण प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचा। निर्बंधता, फक्कड़पन और निरंतर कल्पना के सागर में गोते लगाने वाले इस कवि की मानसिक उर्वरता अद्भुत थी। कॉलरिज दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। अतः उन्होंने अपने काव्य सिद्धांतों की स्थापना तत्व चिंतन के आधार पर की। कॉलरिज की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को नियमों का बंधन स्वीकार नहीं था। उन्होंने वर्ड्सवर्थ का सहयोगी बनकर 18 वीं शताब्दी के कृत्रिम एवं रूढ़ काव्य-मूल्यों के उन्मूलन एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योग दिया। वे पूर्व निर्धारित नियम पालन को अनावश्यक मानते थे तथा मौलिकता और प्रतिभा के पक्षधर

थे। उन्होंने लेखकों एवं आलोचना के संबंध में महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए- "प्रत्येक लेखक जो मौलिक और महान है उस पर उसकी मौलिकता एवं महानता के अनुसार यह भार आ जाता है कि वह काव्य में उस रुचि का परिचय दे जिससे उसके काव्य-रस का आस्वादन किया जाए।" इसी प्रकार आलोचना के संबंध में वे कहते हैं "आलोचना का चरम ध्येय लेखक के सिद्धांतों का प्रतिपादन करना अधिक है, दूसरों की कृतियों पर निर्णय देने के लिए नियम बनाना कम।" कॉलरिज ने बहुत कम लिखा है। उनके संबंध में दो विरोधी मत प्रचलित हैं-'एक के अनुसार कॉलरिज की मौलिकता संदिग्ध है क्योंकि वह जर्मन विद्वानों का अत्यंत ऋणी है। और दूसरे के अनुसार उसका महत्व अक्षुण्ण है।' वस्तुतः सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में भले ही उसका स्थान महत्वपूर्ण न हो परंतु उसके द्वारा प्रतिपादित काव्यगत सिद्धांतों की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कॉलरिज सभी कलाओं तथा संपूर्ण मानव कृतियों के लिए काव्य शब्द का प्रयोग करता है। किंतु Poesy और Poetry का अंतर बताते हुए कहते हैं कि पोएज़ी समस्त ललित कलाओं के लिए प्रजातीय (Generic) नाम है जबकि पोएट्री शब्द का प्रयोग उन्हीं कृतियों के लिए होना चाहिए जिनका माध्यम शब्द है। वे संगीत को कर्णेंद्रिय का काव्य और चित्रकला को नेत्रेंद्रिय का काव्य कहते हैं। कॉलरिज दर्शन, इतिहास, उपदेश तथा विज्ञान सभी को विशिष्ट कल्पना का प्रतिफल मानते हैं। इन सभी का माध्यम भाषा होने के कारण इनमें समानता है किंतु उद्देश्य भिन्न भिन्न होने के कारण इनमें भेद है। कॉलरिज कहते है लक्ष्य दो प्रकार के होते हैं, 1. तात्कालिक, 2. अंतिम। विज्ञान, इतिहास और दर्शन का तात्कालिक लक्ष्य सत्य को व्यक्त करता है जबकि काव्य का तात्कालिक लक्ष्य आनंद देना और अंतिम लक्ष्य सत्य का बोध करना है।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कॉलरिज के काव्य और दर्शन के संबंध तथा कॉलरिज की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों और उनके काव्य सिद्धांतों को

- आलोचना के संदर्भ में कॉलरिज के दृष्टिकोण को और उनकी सिद्धांतों की व्याख्या को
- कॉलरिज के काव्यशास्त्र में मौलिकता और प्रतिभा के महत्व को
- कॉलरिज द्वारा प्रतिपादित पोएज़ी और पोएट्री के अंतर को
- कॉलरिज के अनुसार काव्य का तात्कालिक और अंतिम लक्ष्य क्या है

6.3 अच्छे कवि के गुण

कॉलरिज प्रायः कवि और कविता के समान गुणों की बात कहकर उन्हें परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार अच्छा कवि प्रतिभासंपन्न होना चाहिए। प्रतिभा और काव्यत्व कवि के अभिन्न गुण हैं। इसके अतिरिक्त कवि थे पद्य-माधुरी, मूर्ति विधान, गहन विचार शक्ति, भावुकता, भावावेग, विवेक, निर्णयशक्ति, कल्पना, मानवता, दार्शनिकता, धार्मिकता, तत्ववेत्ता, इतिहास और प्रकृति का जानकार, विज्ञान की विविध विधाओं का जानकार होना चाहिए। कॉलरिज कहता है-' श्रद्धाहीन कवि पागल होता है। उनका मत है कि कवि को व्यक्तिगत रुचियों को अलग करके वस्तुपरक रहकर तथा निर्वैयक्तिक होकर सृष्टि को समझना व उसका चित्रण करना चाहिए। कवि को तटस्थ रहकर सृष्टि के सौंदर्य में डूबकर उसका वर्णन करना चाहिए। ऐसा करने पर वह अपनी दार्शनिकता, निर्वैयक्तिकता, विवेक एवं चेतना के माध्यम से काव्य में नए तत्व की, नए सौंदर्य की सृष्टि कर सकेगा।

6.4 अच्छी कविता के गुण

कॉलरिज श्रेष्ठ काव्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं 'It is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure, through the medium of beauty.' अर्थात कविता सौंदर्य के माध्यम से तत्काल आनंद के उद्रेक के लिए भावों को उद्वेलित करती है। कॉलरिज काव्य को विशिष्ट रचना मानते हैं जो आनंद प्रदान करने के उद्देश्य को ध ारण करती है। कविता में विश्वजनीनता अनिवार्यतः होनी चाहिए तथा बुद्धि एवं हृदय का समन्वय होना चाहिए। कविता में भावों की गहनता तथा विचारों की गंभीरता अनिवार्य है।

यही तत्व काव्य को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। सौंदर्य वह है जो क्षण-क्षण नया होता है अर्थात 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' ऐसा कहा गया है। इसी की ध्वनि कॉलरिज के कथन में सुनाई देती है। वे कहते हैं काव्य में निरंतर भावों की अंतर्धारा का प्रवाह होना चाहिए। ऐसी भावपूर्ण कविता पाठक को मुग्ध कर देती है और वह उसे बार-बार पढ़ना चाहता है। कॉलरिज का मत है कि कवि को काव्य के पूर्ववर्ती नियमों के बंधन से मुक्त होना चाहिए ताकि वह अपनी कल्पनाशक्ति से प्रतिभा और विवेक से नए व सुंदर काव्य की सृष्टि कर सके। कविता में भाव तथा भावों का आवेग आवश्यक है। कविता का उद्देश्य है कि वह कवि के भावों और विचारों को पाठक तक पहुंचाए। काव्य की दो प्रमुख शिल्प विधियों की चर्चा करते हुए कॉलरिज कहते हैं कि आलंकारिक भाषा और छंद को भावावेग ही दीप्ति प्रदान करता है। इसीलिए कवि जब तीव्र भावावेग के क्षणों में काव्य रचना करता है तो उसमें कला का उत्कर्ष आ जाता है। तीव्र भावावेग में भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से अधिक गरिमायुक्त एवं संतुलित होती है। भावावेग में कवि वेद्यांतर शून्य-स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

कॉलरज के अनुसार काव्य का आनंद सौंदर्य के द्वारा उत्पन्न होता है। चूंकि आनंद सौंदर्य के बिना किसी प्रयत्न से स्वयं उद्भूत होता है इसलिए वे ही पाठक ऐसे काव्य का रसास्वादन पूर्णतः कर सकते हैं जिनकी वृत्तियां कोमल हैं, जो भावुक हैं, सौंदर्य के पारखी हैं। वह कहते हैं कि कलाकृति या काव्य में एकता तथा सजीव आंगिकता होनी चाहिए। उदाहरण स्वरूप खिड़की के शीशे पर तुषारपात होने पर जिस तरह तुषार का एक-एक कण मिलकर अद्भुत सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। उसी प्रकार काव्य के सभी सुंदर अंगों को परस्पर मिलाकर काव्य को और अधिक अद्भुत सौंदर्य से पूर्ण कर देना चाहिए। ऐसा काव्य ही सच्चा काव्य होगा जिसके सभी भाग परस्पर अनुपात और औचित्य के साथ छंद-विधान कर उद्देश्य की पूर्ति में लगे हों। कविता की प्रत्येक पंक्ति सामंजस्यकारी हो, रमणीय हो ताकि पाठक रुक-रुक कर उसका आनंद ले रसास्वादन करे। जिस तरह सर्प रुक-रुक कर पुनः आगे चलने की शक्ति संचय करता है। काव्य को भी ऐसा ही होना चाहिए। जो काव्य पाठक को सरपट घोड़े की तरह दौड़ाए वह उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता। कविता में यथार्थ और अयथार्थ दोनों तरह

की वस्तुएं आ सकती हैं किंतु जब अयथार्थ आए तो उस पर कल्पना का इतना गहरा रंग चढ़ा दिया जाए कि वह यथार्थ प्रतीत हो। यह शक्ति कवि के पास होनी चाहिए।

स्वप्रगति परीक्षण

1. कॉलरिज के अनुसार, कविता में भावों की _____ और विचारों की _____ अनिवार्य है।
2. कॉलरिज का मानना है कि कवि को काव्य के _____ के बंधन से मुक्त होना चाहिए।
3. काव्य में आनंद उत्पन्न होता है _____ के माध्यम से।
4. कविता में _____ और _____ दोनों प्रकार की वस्तुएं आ सकती हैं, किंतु अयथार्थ को यथार्थ की तरह प्रस्तुत करना आवश्यक है।

6.5 कल्पना सिद्धांत

वर्ड्सवर्थ के मुख से उसकी ही एक कविता सुनकर कॉलरिज अत्यंत रोमांचित एवं भावविभोर हो गया। उसकी भावनाएं एवं बुद्धि दोनों चैतन्य हो गई तथा उसे सौंदर्य और सत्य का साक्षात्कार हुआ। तब कॉलरिज ने विचार किया कि यह सब कवि की प्रतिभा का चमत्कार है कि वह काव्य को इस चरम सीमा तक मर्मस्पर्शी और सुबोध बना सकता है कि वह सीधे पाठक या श्रोता के हृदय को उद्वेलित कर सके। यह शक्ति कवि की कल्पना शक्ति है कि वह काव्य को विशिष्ट बना दे। वर्डसवर्थ को यह कल्पनाशक्ति अपने चरम एवं गहन रूप में प्राप्त थी। यह कल्पना ऐसे अर्थों में सार्थक होती है जब वह बुद्धि और हृदय, बाह्य जगत (संसार) एवं अंतर्जगत (आत्मा) में, चेतना में, परिचय और अपरिचय, अन्तर्वेग और व्यवस्था, अवधारणा और भाव का सामंजस्य कराती है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना ही प्रतिबोधन (Perception) तथा अवबोधन (understanding) के बीच की उस खाई को पाट सकती है जिसे बुद्धि नहीं पाट सकती। इस कल्पना शक्ति में प्रकृति के सुंदर एवं शाश्वत रूपों को सरलता एवं

सरसता के साथ प्रकट करने की सामर्थ्य होती है। जैसे हिंदी कवियत्री महादेवी- मेघ, नदी, दीपक के रूपों में अपनी कल्पना से विचारों को शब्द देती हैं। इसलिए कॉलरिज ने कल्पना को-a unifying creative faculty तथा beauty making power कहकर उसकी अभ्यर्थना की है।

कल्पना के रंग में या कल्पना के आलोक में वस्तु का प्रस्तुतीकरण ही पुनः प्रस्तुतीकरण कहलाता है।

कॉलरिज तत्ववेत्ता होने के कारण दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते थे। उनके काव्य सिद्धांत इसी तत्व चिंतन पर आधारित हैं। वे मन को स्रष्टा का प्रतिबिंब मानते हुए कहते थे कि संसार के पदार्थ ब्रह्म के विषय अथवा विचार हैं और जगत विषयीकृत ब्रह्म है। ब्रह्म और प्रकृति का संयोग कल्पना द्वारा होता है। विश्व ब्रह्म की कला है। मानव चेतना भी विश्व चेतना है। मानव कल्पना प्रकृति के उस क्षेत्र को जिसमें मानव मन का व्यापार है, मानव-मन के समक्ष लाती है। यदि विश्व ब्रह्म का आत्मज्ञान है तो मनुष्य का संसार मनुष्य का आत्मज्ञान है। इस आत्मज्ञान का कारण कल्पना है। इस कल्पना को कॉलरिज ने प्रथम पदस्थ कल्पना कहा है और यह प्रथम पदस्थ कल्पना प्रत्यक्षीकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। विश्व भगवान का प्रत्यक्षीकरण है। मनुष्य कल्पना, ब्रह्म कल्पना का ही प्रतिवाद है। दिव्य प्रेरणा है तथा ईश्वर की सृजन शक्ति की सहोदरा है। ब्रह्म कल्पना और मानव कल्पना दोनों कार्य करती हैं। अंतर यह है कि ब्रह्म कल्पना बड़े पैमाने पर कार्य करती है और मानव कल्पना छोटे पैमाने पर।

निष्कर्ष यह है कि कॉलरिज संपूर्ण सृष्टि को चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं तथा जड़ और चेतन में सामंजस्य स्वीकार करते हैं। जड़ पदार्थ को देखकर कवि के हृदय में भाव उत्पन्न होते हैं और वह काव्य सृजन में रत हो जाता है। कॉलरिज कल्पना के दो प्रकार मानते हैं 1. आद्य या मुख्य या प्राथमिक कल्पना, 2. प्रतिनिधि या विशिष्ट कल्पना। कॉलरिज ब्रह्मवादियों की तरह आत्मा व जगत दोनों को एक ही सत्ता के दो रूप मानता है। पर ब्रह्मवादी आत्मा और जगत के बीच भिन्नता का कारण माया को मानते हैं। वहीं कॉलरिज इसका कारण मुख्य कल्पना को मानते हैं। इसी मुख्य कल्पना के कारण चेतना खंड-

खंड रूप में दिखाई देती है। ब्रह्म ने इसी के आश्रय पर सृष्टि का निर्माण किया। यह मुख्य कल्पना व्यक्तियों में भी पाई जाती है। यह मानव-मन में मानसिक विश्व को प्रस्तुत करती है। यह समस्त मानव ज्ञान की सजीव शक्ति है और संपूर्ण मानव प्रत्यक्षीकरण का प्रमुख माध्यम हैं उसी के द्वारा हम विषय एवं विषयी को दो भागों में बांट देते हैं। यही कल्पना चेतना को खंड-खंड करके विषय और विषयी को अलग-अलग मानकर चलती है। हम इंद्रियों के द्वारा वस्तुओं का जो अनुभव करते हैं उसे कल्पना व्यवस्थित करती है। यह सभी बिंबों को क्रमानुसार करके हमारे अव्यवस्थित बोध को ज्ञान में बदल देती है। उदाहरण स्वरूप हम गुलाब को आंखों से देखकर, हाथों से छूकर, जीभ से चखकर और नाक से सूंघकर देखते हैं तो इन अनुभवों को व्यवस्थित करके कल्पना ही हमें बताती है कि यह गुलाब है।

विशिष्ट कल्पना कलाकारों में पाई जाती है। जनसाधारण में नहीं। वह प्राथमिक या आद्य कल्पना शक्ति की प्रतिध्वनि है जिसका मनुष्य सजगता से प्रयोग करता है। इसके द्वारा कलाकार बाहह्य संसार का पूर्णतः पुनसृजन तथा प्रस्तुतीकरण कर पाता है। यह वही विशिष्ट कल्पना शक्ति है जो विषय और विषयी का समन्वय तथा अनेक रूपों एवं व्यापारों को संबद्ध कर, एकसूत्रता स्थापित कर अखण्ड रूप में प्रस्तुत करती है। प्राथमिक कल्पना सहज रूप से अपना कार्य करती है जबकि विशिष्ट कल्पना का प्रयोग सजग इच्छाशक्ति से किया जाता है।

कलाकार प्रकृति की कोरी नकल नहीं करता, वह आनंद देने वाला भावात्मक पुनसृजन करता है जिससे एक अपूर्व सौंदर्य से ओतप्रोत नवीन सृष्टि हमारे सामने आती है जिसमें पूर्व की त्रुटियां एवं कमियों का अभाव रहता है। इस संपूर्णता की सृष्टि करने के लिए वह उदाहरण में से कुछ छोड़ता है और उसमें कुछ नया कल्पना शक्ति से जोड़ता है। जिससे पूर्णतः संतुष्टि प्रदान करने वाली रचना सामने आती है। कॉलरिज के मतानुसार- "कल्पना वह मानसिक शक्ति है जो विभिन्न तत्वों का एकीकरण कर, समन्वय करती है। विभिन्न पक्षों को एक संश्लिष्ट अन्विति के रूप में ढालती है। जिससे वे पक्ष घुल-मिलकर एकाकार हो जाते हैं। कल्पना का कार्य परस्पर विसंवादी या विरोधी गुणों में सामंजस्य और

संतुलन उत्पन्न करना है। वह समान असमान, सीम-असीम, प्राचीन-नवीन, व्यक्ति-प्रतिनिधि, विचार-बिंब, सामान्य विशिष्ट, विवेक आत्मनिग्रह तथा उत्साह और प्रखर भावनाओं में सामंजस्य उत्पन्न करती है।"

कोरे अंधानुकरण को कॉलरिज जीवन की यांत्रिक नकल तथा प्रकृति की चोरी मानते हैं तथा इसे त्याज्य समझते हैं। कलाकार का महत्व भावपूर्ण सृजन करना है यह कार्य कल्पना ही कर सकती है। कल्पना के द्वारा शरीर मस्तिष्क बन जाता है। वह मृत वस्तुओं में प्राणों का संचार करती है। जिस प्रकार स्पंदन, गति और प्राणों के अभाव में सुंदर मोम की पुतलियां हमें आकर्षित नहीं कर पातीं उसी तरह प्रकृति की अनुकृति यांत्रिक जड़ता के कारण कल्पना द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा के अभाव में सहृदय के मन को स्पर्श नहीं कर पाती। कल्पना महत्वपूर्ण, क्षमतावान, शक्तिशाली है तथा कवि का अनिवार्य गुण है।

6.6 कल्पना एवं ललित कल्पना

कॉलरिज इनमें अंतर को स्वीकार करते हैं। ललित कल्पना का क्षेत्र अचल और निर्दिष्ट पदार्थ होते हैं। ललित कल्पना पदार्थों का एकत्रीकरण करती है जिनमें न सरसता होती है न मार्मिकता। अन्विति भी नहीं होती। ललित कल्पना का संबंध मस्तिष्क से है वह निर्जीव शक्ति है, जो यांत्रिक होती है। यह स्मरण की एक रीति है। जबकि कल्पना का संबंध आत्मा से है। वह एकीकरण और समंजन करती है। ललित कल्पना से श्रेष्ठ, सजीव एवं सरस मार्मिक रचना अभिव्यक्ति होती है।

6.7 सार संक्षेप

कॉलरिज, जो रोमांटिक युग के महान कवि और आलोचक थे, ने काव्य और दर्शन के बीच अविच्छिन्न संबंध की स्थापना की। उन्होंने स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया और 18वीं शताब्दी की कृत्रिम काव्य-शैलियों के उन्मूलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कॉलरिज के अनुसार, काव्य में मौलिकता और प्रतिभा का अत्यधिक महत्व है, और आलोचना का उद्देश्य लेखक के सिद्धांतों को प्रतिपादित करना होना चाहिए, न कि दूसरों की कृतियों पर निर्णय देना। वे

"पोएज़ी" को ललित कलाओं का प्रजातीय नाम मानते थे, जबकि "पोएट्री" का प्रयोग केवल उन कृतियों के लिए करते थे जिनका माध्यम शब्द होता है। कॉलरिज का मानना था कि काव्य का तात्कालिक लक्ष्य आनंद प्रदान करना और अंतिम लक्ष्य सत्य का बोध करना होता है। उनके विचारों में काव्य, संगीत, चित्रकला, दर्शन, और विज्ञान के बीच समानताएँ थीं, लेकिन इनका उद्देश्य और माध्यम अलग-अलग थे।

6.8 मुख्य शब्द

1. **स्वच्छंदतावादी**:
   स्वच्छंदतावादी का अर्थ है वह व्यक्ति या विचारधारा जो किसी बंधन, परंपरा या नियमों से स्वतंत्र होकर अपने विचार, भावना या कार्यों में स्वतंत्रता को प्राथमिकता देती हो। यह साहित्य, कला, या जीवन के किसी भी क्षेत्र में स्वतंत्रता का प्रतीक है।
2. **प्रतिभासंपन्न**:
   इसका अर्थ है वह व्यक्ति जो किसी विशेष क्षेत्र में अत्यधिक कुशल, रचनात्मक और असाधारण क्षमता से संपन्न हो। प्रतिभा संपन्न व्यक्ति अपनी मौलिकता और अद्वितीयता के कारण विशिष्टता हासिल करता है।
3. **भावावेग**:
   भावावेग का अर्थ है अत्यधिक भावनात्मक स्थिति, जिसमें व्यक्ति किसी भावना (जैसे प्रेम, क्रोध, दुःख आदि) के तीव्र प्रवाह में बह जाता है। यह भावना का चरम रूप है, जो मनुष्य के व्यवहार और विचारों को प्रभावित कर सकता है।
4. **मूर्तिविधान**:
   मूर्ति विधान का अर्थ है मूर्ति या आकृति की निर्माण प्रक्रिया या उसकी संरचना का विधान। यह किसी मूर्ति के आकार, स्वरूप और भावों को व्यवस्थित रूप से निर्मित करने का तरीका दर्शाता है।

5. **गहनविचार**:

   गहन विचार का अर्थ है किसी विषय पर गंभीरता और गहराई से चिंतन करना। यह विचार प्रक्रिया मनुष्य को किसी समस्या या विषय की जड़ों तक पहुंचने और उसके समाधान या समझ की दिशा में मदद करता है।

6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - गहनता, गंभीरता
2. उत्तर - पूर्ववर्ती नियमों
3. उत्तर - सौंदर्य
4. उत्तर - यथार्थ, अयथार्थ

6.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, एस. (2020). *कोलरिज और रोमांटिक आलोचना*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. सिंह, ए. (2021). *कोलरिज का दर्शन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. रूटलेज।
3. शर्मा, आर. (2022). *रोमांटिक कविता और आलोचना: कोलरिज के कार्यों की समझ*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. वर्मा, पी. (2023). *18वीं शताब्दी के साहित्य में सौंदर्यशास्त्र के सिद्धांत*. सेज पब्लिकेशंस।
5. जोशी, म. (2024). *रोमांटिक विचारधारा का विकास: कोलरिज और उसके बाद*. मैकमिलन इंडिया।

6.11 अभ्यास प्रश्न

1) कॉलरिज के कल्पना सिद्धांत को समझाइए

2) कॉलरिज द्वारा सुझाए गए अच्छी कविता और अच्छे कवि के गुणों पर प्रकाश डालिए

3) कॉलरिज का साहित्यिक परिचय दीजिए

इकाई - 7

मैथ्यू आर्नल्ड

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 कला और नीति

7.4 आलोचना का स्वरूप और कार्य

7.5 आर्नल्ड की देन

7.6 सार संक्षेप

7.7 मुख्य शब्द

7.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

7.10 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मैथ्यू आर्नल्ड ने काव्य रचना के माध्यम से साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया लेकिन वे मूलतः, स्वभावतः आलोचक थे। वे साहित्यिक समस्याओं एवं जीवन की समस्याओं को एक-सी मानते थे इसलिए साहित्य का मूल्यांकन जीवन के संदर्भ में करने के पक्षपाती थे। उनका मत है 'साहित्य जीवन की आलोचना है।' अतः जीवन से अलग साहित्य के सौंदर्य की मीमांसा उन्हें निराधार प्रतीत होती थी। आर्नल्ड की दृष्टि में लोक-कल्याण की भावना महत्वपूर्ण है इसलिए साहित्य का आदर्श और कसौटी भी वे लोक-मंगल और संस्कृति का विकास ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में काव्य का प्रयोजन केवल आनंद प्रदान करना नहीं है बल्कि मानव को जीवन की पूर्णता, सार्थकता का ज्ञान देकर उसका आत्म-विकास करना है तथा समाज का उत्कर्ष करना है। चूंकि प्राचीन यूनानी काव्य का भी यही प्रयोजन था इसलिए वे उसे पसंद करते थे तथा प्राचीन यूनानी आलोचकों की

तरह ही साहित्य का मूल्यांकन सामाजिक तथा नैतिक प्रतिमानों के आधार पर करते थे। उनका मानना था कि किसी कवि की महत्ता इस आधार पर प्रतिपादित होती है कि उसके साहित्य ने युग की सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकताओं को किस सीमा तक पूरा किया, न कि इस बात पर कि उसने कितना अधिक या सुंदर साहित्य रचा। आर्नल्ड की शैली में सशक्तता और परिपक्वता थी। उनके अवसान के बाद भी उनकी गंभीर, गहन, स्थिर मान्यताओं का प्रभाव परवर्ती अंग्रेजी साहित्यकारों के मनोमस्तिष्क पर छाया रहा। उनका लेखन अरस्तू की तरह प्रामाणिक माना जाता था। 19 वीं शताब्दी के अंत में आर्नल्ड को प्रामाणिक मानते हुए उनके आलोचना-सिद्धांतों को अकाट्य तथा आदर्श माना जाता रहा।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- मैथ्यू आर्नल्ड के साहित्यिक दृष्टिकोण और उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण के बारे में।
- आर्नल्ड के अनुसार साहित्य और जीवन के संबंध को समझना।
- आर्नल्ड के आलोचनात्मक सिद्धांतों में लोक-कल्याण, संस्कृति और समाज के महत्व का विश्लेषण।
- आर्नल्ड के अनुसार काव्य का उद्देश्य केवल आनंद नहीं, बल्कि मानव और समाज के उत्थान के लिए होता है।
- प्राचीन यूनानी काव्य और आलोचकों की विचारधारा के प्रभाव को आर्नल्ड की आलोचना पर समझना।

7.3 कला और नीति

"Poetry is, at bottom, is a criticism of life" अर्थात 'कविता मूलतः जीवन की आलोचना है' मानने वाले आर्नल्ड कविता में नीति तत्व को पर्याप्त महत्व देते हैं तथा मानते हैं कि जो कविता नीति से उदासीन है वह जीवन से भी उदासीन है। नीति के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए वह लिखता है कि "अधिकाधिक मनुष्य जाति को पता लगेगा कि जीवन का पुनराख्यान ख्यान करने के लिए, मानव जाति को आश्वस्त करने के लिए, उसकी रक्षा के लिए हमें कविता का आश्रय लेना पड़ेगा। बिना कविता के हमारा विज्ञान अपूर्ण प्रतीत होगा। आज हम जिसे धर्म और दर्शन कहते हैं, उसका स्थान निकट भविष्य में कविता ही

लेगी।" आगे लिखते हैं कि, "एक समय था जब धर्म ने मानव कल्याण के लिए उपयोगी कार्य किया, पर अब वह केवल धार्मिक संस्थाओं में सिमट कर रह गया है। अब उसका कार्य अर्थात मनुष्य के आंतरिक जीवन को अधिक मधुर, स्वच्छ तथा आलोकपूर्ण बनाने का कार्य संस्कृति करेगी और चूंकि संस्कृति तथा कविता अभिन्न हैं। अतः यह कार्य कविता करेगी।"

शैली, बायरन, कॉलरिज के काव्य को नीतिहीनता के कारण आर्नल्ड निंदनीय मानता है। नैतिकता से उसका अभिप्राय है कि "कवि जीवन के लिए विचारों का उदात्त और व्यापक प्रस्तुतीकरण करे। वह मानता है कि नैतिकता युगानुरूप बदलती रहती है। अतः कवि को तत्कालीन युग की नैतिकता से ओतप्रोत होना चाहिए। वे कहते हैं काव्य जब इंद्रियों की संतुष्टि या कलात्मक साज सज्जा वाला हो तो उसे मार्ग में प्राप्त सराय समझना चाहिए जबकि काव्य का लक्ष्य 'घर' प्राप्त कराना है। कहते हैं "हमारी मंजिल है हमारा घर, हमें वहां पहुंचकर अपने परिवार, मित्रों और देशवासियों के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना है, हमें घर पहुंचकर आंतरिक स्वतंत्रता, विश्रांति, आनंद और संतुष्टि उपलब्ध करनी है।"

7.4 आलोचना का स्वरूप और कार्य

आर्नल्ड ने आलोचक तथा समाज और रचना के परस्पर संबंधों पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए जो पाश्चात्य विद्वानों को प्रभावित और प्रेरित करते रहे। रचनात्मक साहित्य को जीवन की आलोचना मानने के कारण आर्नल्ड ने उसका संबंध संपूर्ण संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया।

आर्नल्ड के मतानुसार आलोचक का यह कर्त्तव्य है कि वह संसार के सर्वोत्तम ज्ञान और सर्वोत्तम विचारों को जाने, उन पर चिंतन-मनन कर उन्हें प्रसारित करे ताकि समाज उससे लाभान्वित हो और सत्य तथा नव्य भावनाओं की धारा प्रवाहित हो सके। ऐसा करके वह साहित्य का संबंध संस्कृति से जोड़ सकता है। आर्नल्ड के अनुसार आलोचक में तीन गुण अनिवार्य हैं-1. आलोचक अध्ययन करे, समझे और वस्तुओं के यथार्थ को जाने, 2. जो उसने सीखा है उसे हस्तांतरित करे ताकि उत्तम भावनाएं सभी ओर प्रबल स्थान बना सकें और संसार परिवर्तित हो। उसका इस दिशा में कार्य धर्म प्रचारक की तरह उत्साहपूर्ण और कर्मठतायुक्त होना चाहिए, 3. वह रचनात्मक शक्ति की क्रियाशीलता के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करें। भावी रचनात्मक प्रतिभा को उत्तेजित और पोषित करने वाली अधिकाधिक भाव धारा प्रवाहित करे। निष्कर्ष यह है कि आर्नल्ड चाहते हैं- आलोचक सुधारक की भूमिका में हो। वह रचनाकारों की प्रतिभावान पीढ़ी के लिए उपजाऊ भूमि तैयार करे ताकि अनुकूल अवसर पाकर रचनाकार उसमें श्रेष्ठ सृजन की लहलहाती फसल उगा सकें जिससे न केवल समाज का पोषण हो बल्कि लोग सामाजिक जीवन जीने का सलीका भी सीख सकें। संस्कृति का विकास हो और समाज पूर्णता की ओर अग्रसर हो। आर्नल्ड ने अपने ग्रंथ 'Culture and Anarchy' में इसी बात पर बल दिया है। इस

विचारधारा के कारण एक आलोचक ने कहा "आर्नल्ड आलोचना का प्रचारक अधिक है. आलोचक कम।" सैन्त ब्यव ने जिज्ञासा को महत्व देते हुए कहा कि आलोचक को वस्तु स्थिति पर धयान देना चाहिए। आर्नल्ड इसे पर्याप्त नहीं मानते।

आर्नल्ड का मत है कि आलोचक जीवन के अनुदात्त और अस्थायी पक्ष को अलग कर के उदात्त और स्थायी को सबल बनाकर जीवन की पूर्णता का योध कराए

तथा संस्कृति के नैतिक पक्ष का संवर्धन करे। वे कहते हैं 'आलोचक को निष्पक्ष होना चाहिए अर्थात जो बातें बौद्धिक और नैतिक पूर्णता के मार्ग में बाधक बनती हैं, उसे उन बातों से मुक्त रहना चाहिए। आलोचक का निर्णय असभ्य तथा आभिजात्य दोनों के पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिए क्योंकि गंभीर विचार एवं ज्ञान का प्रकाश उनकी पहुंच के बाहर होते हैं। इसी तरह साधारण जनसमूह की अंधी भावुकता से भी उसे दूर रहना चाहिए। संतोषी मध्यवर्ग रूढ़िवादिता, धर्माधता, व्यापार, धनार्जन तथा विलास में लिप्त रहने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। अतः आलोचक को उनके इन दूषित विचारों से दूर रहना चाहिए। आर्नल्ड 'निष्पक्ष' शब्द को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि निष्पक्ष रहना अर्थात असत्य तथा अर्धसत्य से दूर रहना। नगरों के यांत्रिक जीवन से संबद्ध वे वस्तुएं जो आध्यात्मिक मूल्यों की अवहेलना करती हैं उनसे दूर रहना चाहिए। आर्नल्ड की दृष्टि में निष्पक्ष आलोचक वह है जो सांस्कृतिक पूर्णता के प्रति उन्मुख हो तथा जीवन की भद्दी तथा सामान्य रुचियों से अप्रभावित हो।

यहां नैतिक और सामाजिक पूर्णता की बात कहकर आर्नल्ड ने आलोचक पर प्रतिबंध लगा दिया है जिससे वह पूर्वाग्रहयुक्त हो सकता है। जिससे उसकी आलोचना विकृत हो सकती है क्योंकि पूर्वाग्रह विवेक और धारणाशक्ति को धुंधला कर देते हैं। आर्नल्ड स्वयं इसका शिकार हुए हैं तथा आलोचना के पात्र बने हैं। आर्नल्ड ने कहा कि आलोचक का कार्य है कि वह कवि के लिए जमीन तैयार करें। उन्होंने इस संबंध में जान दि बैपटिस्ट को उद्धृत किया है 'The element with which the creative power works are ideas; the best ideas on every metter which literature touches, current at the time.' अर्थात सृजनात्मक साहित्य अपने समय के श्रेष्ठ विचारों पर आधारित होता है। ये पौष्टिक एवं श्रेष्ठ विचार आलोचक ही कवि को प्रदान करता है। कवि का कार्य केवल आलोचक द्वारा खोजे और प्रतिपादित किए गए विचारों का संश्लेषण करना है। आर्नल्ड ने आलोचक का जो कार्य बताया वह निःसंदेह ठीक है लेकिन अकेला वही यह कार्य नहीं करता। आर्नल्ड आलोचक को कुछ ज्यादा श्रेय देते हैं। यह ठीक है कि महान आलोचक जीवन को यांत्रिकता से मुक्त करता है। ज्ञान का अर्जन ज्ञान और ज्ञानदान के लिए करता है। विचारों को उनके माधुर्य

एवं आलोक के कारण पसंद करता है। सर्वश्रेष्ठ विचारों का प्रचार करता है तथा जीवन में उन विचारों को रूपांतरित करने का प्रयास करता है। अपने ज्ञान और विचारों को संसार तक पहुंचाता है। तब भी वह उतने महत्व का अधिकारी नहीं जितना आर्नल्ड ने उसे दिया।

आर्नल्ड कहते हैं, "सुंदर कविताओं और विचारों का दीर्घ अनुभव, श्रेष्ठ रुचि और युक्ति से महान कविता की खोज की जा सकती है।" स्टडी ऑफ पोयट्री में वे कहते हैं- 'आलोचकों को व्यर्थ ही महान कविता के लक्षण बताने का परिश्रम करने की जगह महान कविता के उदाहरण पढ़कर उसमें पाए जाने वाले गुणों को ही महान कविता की कसौटी बताना चाहिए। इस तरह आलोचक स्वयं भी महान और साधारण कविता का अंतर समझ जाएंगे तथा नये काव्य का मूल्यांकन ठीक तरह से कर सकेंगे। आलोचक दीर्घ एवं गहन अध्ययन कर कविता के अति उदात्त स्थलों के चमत्कार को समझकर उन्हें ही नये काव्य की कसौटी बनाएं। या वे उन कविताओं में विषयवस्तु का सत्य, गंभीर्य, शैली का सौंदर्य, शक्ति और उदात्तता को परखें। ये महान काव्य के आवश्यक गुण हैं इनकी उपस्थिति में काव्य सरस, मुग्धकारी होता है तथा आनंददाता होता है।'

आर्नल्ड की आलोचना-पद्धति एवं सिद्धांत में त्रुटियां हैं। वह काव्यांशों की तुलना करने तथा नैतिक मूल्यों पर अमर्यादित, असीमित बल देता है जिससे कभी-कभी वह सामान्य पंक्तियों को भी आदर्श मान लेता है। जैसे मिल्टन की कुछ पंक्तियां-

And courage never to submit or yield.

And what is else not to be overcome.

आर्नल्ड की आलोचना कभी-कभी विकृत एवं पक्षपातपूर्ण हो जाती है। तुलनात्मक पद्धति श्रेष्ठ है लेकिन यह पूरे काव्य पर लागू होनी चाहिए। न कि काव्यांशों पर। किसी कृति पर निर्णय देते समय उसके संपूर्ण तत्वों की सामूहिकता से उत्पन्न प्रभाव को रेखांकित करना चाहिए न कि किसी अंश की सुंदरता या उदात्तता पर। आर्नल्ड सर्वाधिक महत्व अनुभवात्मक मूल्यांकन को देते हैं। वे ऐतिहासिक मूल्यांकन को कम महत्व देने का कारण बताते हैं कि,

1. किसी काव्य का ऐतिहासिक मूल्य होते हुए भी उसमें काव्यगत दोष हो सकते हैं,

2. कोई कृति साहित्य के विकास में योग देने, युग जीवन की व्याख्या करने के लिए प्रशंसित हो सकती है लेकिन यह देखना आवश्यक है कि उसका काव्य-मूल्य क्या है? वह काव्य की वास्तविक कसौटी पर कहां तक खरी उतरती है। वैयक्तिक मूल्यांकन उनके लिए महत्वहीन है। कारण हम व्यक्तिगत रुचियों, संबंधों, परिस्थितियों के प्रभाव में आकर किसी कृति की निंदा या प्रशंसा कर सकते हैं। यह आलोचना बेमानी होगी। आर्नल्ड का यह मत भी स्वीकारणीय नहीं है क्योंकि बिना व्यक्तिगत रुचि के किसी रचना के संपूर्ण गुणों का उद्‌घाटन नहीं हो सकता। आर्नल्ड का यह मत कि आलोचक महान काव्य की ही प्रशंसा करे द्‌वितीय श्रेणी के साहित्य से उदासीन रहे, उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि सभी पर्वत हिमालय नहीं हो सकते लेकिन सभी छोटी पर्वत श्रेणियां उपेक्षणीय नहीं होतीं। यदि मध्यम कोटि के साहित्य की उपेक्षा ही करते रहेंगे तो बहुत अच्छा खो बैठेंगे। इसीलिए आलोचक को उन्हें प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देते हुए उनकी रचनाओं को भी आलोचना का पात्र मानना चाहिए।

स्वप्रगति परीक्षण

1. आर्नल्ड के अनुसार आलोचक का कर्त्तव्य है कि वह _____ और _____ को जाने और उन पर चिंतन करके समाज में प्रसारित करे।
2. आर्नल्ड के मतानुसार आलोचक को _____ और _____ से मुक्त रहना चाहिए।
3. आर्नल्ड का मानना है कि आलोचक का कार्य कवि के लिए _____ तैयार करना है।
4. आर्नल्ड के अनुसार आलोचक का कार्य जीवन की _____ और _____ को समझकर उसे प्रकट करना है।

7.5 आर्नल्ड की देन

आर्नल्ड की देन-आर्नल्ड ने कविता के मिथ्या तत्वों, छद्म और आडंबरप्रियता काविरोध किया तथा उसमें उदात्तता, गरिमा, सत्य आदि सद्गुणों की प्रतिष्ठा की। उसने सिखाया कि अतिवादिता, अर्धसत्य और आडंबर का तिरस्कार करना चाहिए। वह गद्य तथा पद्म की शैली को एक दूसरे से भिन्न मानता है। वह कहता है कि गद्य में पद्म की शक्ति आ ही नहीं सकती। गद्य मस्तिष्क से उत्पन्न होता है जबकि कविता आत्मा की वस्तु है इसलिए दोनों की शैली एवं भाषा में अंतर है। काव्य में कसावट, शुद्धता, संगीतात्मकता जैसे गुण अनिवार्य हैं। उसमें अर्थ गांभीर्य होना चाहिए। जबकि गद्य में नियमितता, एकरूपता, सटीकता और संतुलन अनिवार्य हैं।

आर्नल्ड से अमेरिका के इमर्सन तथा हेनरी जेम्स जैसे विद्वान भी प्रभावित थे। उनके आलोचना सिद्धांत का पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा आलोचना सिद्धांतों में विशेष स्थान है।

7.6 सार संक्षेप

मैथ्यू आर्नल्ड एक प्रमुख आलोचक थे, जिन्होंने काव्य रचना के माध्यम से साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया, लेकिन उनकी वास्तविक पहचान आलोचक के रूप में बनी। आर्नल्ड का मानना था कि साहित्य जीवन की आलोचना है, और इसलिए साहित्य का मूल्यांकन जीवन के संदर्भ में करना चाहिए। वे साहित्य के सौंदर्य को निराधार मानते थे और साहित्य के आदर्श को लोक-मंगल तथा संस्कृति के विकास से जोड़ते थे। उनका विचार था कि काव्य का उद्देश्य केवल आनंद प्रदान करना नहीं है, बल्कि यह मानव को जीवन की पूर्णता और सार्थकता का ज्ञान देकर उसका आत्म-विकास करने में मदद करता है, साथ ही समाज के उत्थान में भी योगदान देता है।

आर्नल्ड प्राचीन यूनानी काव्य के समर्थक थे क्योंकि उनके अनुसार प्राचीन काव्य का यही उद्देश्य था। वे साहित्य का मूल्यांकन सामाजिक और नैतिक प्रतिमानों के आधार पर करते थे और मानते थे कि किसी कवि की महत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि उसने अपने साहित्य के माध्यम से युग की सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकताओं को किस हद तक पूरा किया। आर्नल्ड की शैली में गहनता और परिपक्वता थी, और उनके आलोचनात्मक सिद्धांतों का प्रभाव 19वीं शताब्दी के अंत में परवर्ती साहित्यकारों पर गहरा रहा। उनका लेखन अरस्तू के सिद्धांतों के समान प्रामाणिक और आदर्श माना जाता था।

7.7 मुख्य शब्द

1. **मनु मस्तिष्क**:
    - *मनु*: भारतीय संस्कृति में मनु मानवजाति के आदिपुरुष और "मनुस्मृति" के रचयिता माने जाते हैं।
    - *मस्तिष्क*: मानव का दिमाग या सोचने-विचारने की क्षमता।
    - **मनु मस्तिष्क** का अर्थ संदर्भ पर निर्भर करता है। यह "मनु जैसी सोच रखने वाला" या "मनुष्य की बौद्धिकता" का प्रतीक हो सकता है।
2. **सुसंबंध**:
    - *सु* (अच्छा) + *संबंध* (रिश्ता या जुड़ाव)
    - इसका अर्थ है "अच्छे या सकारात्मक संबंध"।
3. **तादात्म्य**:
    - *ता* (तत्त्व) + *आत्म्य* (आत्मा या स्वभाव)
    - इसका अर्थ है "एकरूपता", "समानता", या "मिलन"।
    - जैसे, किसी के विचारों या भावनाओं से गहरी समानता या जुड़ाव।
4. **उद्वेलित**:
    - *उद* (ऊपर) + *वेलित* (लहराना या उठाना)
    - इसका अर्थ है "उत्तेजित", "आंदोलित", या "भावनाओं से भरा हुआ"।

5. **समाजोत्कर्ष**:
    - *समाज* (समुदाय) + *उत्कर्ष* (विकास या उन्नति)
    - इसका अर्थ है "समाज की प्रगति" या "समाज का उत्थान"।

7.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सर्वोत्तम ज्ञान, सर्वोत्तम विचार
2. उत्तर - पूर्वाग्रह, साधारण जनसमूह की अंधी भावुकता
3. उत्तर - विचारों का संश्लेषण
4. उत्तर - उदात्त, स्थायी

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, अ. (2021). *आर्नल्ड और उनका साहित्य: सामाजिक प्रासंगिकता की आलोचना*. दिल्ली: अकादमिक प्रेस।
2. सिंह, र. (2022). *मैथ्यू आर्नल्ड: उनके विचार और साहित्यिक आलोचना*. जयपुर: आर. के. पब्लिशर्स।
3. गुप्ता, प. (2023). *मैथ्यू आर्नल्ड की आलोचना में सामाजिक और नैतिक आयाम*. मुंबई: लिटरेचर वर्ल्ड।
4. कुमार, स. (2020). *आर्नल्ड का आलोचनात्मक सिद्धांत और विक्टोरियन साहित्य पर उसका प्रभाव*. दिल्ली: लिटरेरी होराइजन।
5. देसाई, म. (2024). *मैथ्यू आर्नल्ड और विक्टोरियन नैतिक परिप्रेक्ष्य*. कोलकाता: विजडम बुक्स।

7.10 अभ्यास प्रश्न

1) मैथ्यू अर्नाल्ड द्वारा प्रस्तुत उत्तम साहित्य के विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2) मैथ्यू अर्नाल्ड के कला एवं नीति संबंधी विचारों पर टिप्पणी कीजिए।
3) मैथ्यू अर्नाल्ड द्वारा प्रस्तुत आलोचना के स्वरूप एवं कार्य पर निबंध लिखिए।

इकाई - 8

टी. एस. इलियट

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 इलियट का आलोचनात्मक दृष्टिकोण

8.4 परम्परा संबधी दृष्टिकोण

8.5 निर्वैयक्तितावाद

8.6 इलियट का अभिजातवाद

8.7 इलियट का महत्व

8.8 सार संक्षेप

8.9 मुख्य शब्द

8.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

8.12 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

थॉमस स्टीयर्स इलियट का जन्म अमेरिका में हुआ। आधुनिक पाश्चात्य साहित्यकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। इलियट बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। वे एक साथ उच्चकोटि के नाटककार, युग-कवि, मूर्धन्य समीक्षक, पत्रकार, साहित्य सिद्धांतकार तथा संपादक हैं। इलियट के पांच कविता संग्रह व छह नाटक हैं तथा उनके भाषणों एवं निबंधों के संग्रह उनकी समालोचना कृतियों के रूप में विख्यात है जो उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। इलियट स्वाध्याय के धनी थे। उन्होंने पूर्ववर्तियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का गहन अध्ययन किया और उन पर लेख लिखे जो उनके साहित्य के प्रति अनुराग

को दर्शाते हैं। उन्होंने दान्ते, शेक्सपीयर, मिल्टन, कॉलरिज, वर्ड्सवर्थ आदि पर लेख लिखे।

पाश्चात्य साहित्य पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि वहां महान कवि ही महान आलोचक हुए हैं। इलियट तो इसी बात पर विश्वास करते थे कि कवि आलोचक ही महत्वपूर्ण आलोचना कर सकता है। शायद यही कारण है कि उनकी कविताओं में उनकी आलोचना ही प्रतिबिंबित होती है।

बीसवीं सदी के आरंभ से ही रोमानी एवं मानवतावादी अवधारणाओं का विरोध आरंभ हो गया था। इलियट भी इससे सहमत थे तथा स्वच्छंदतावाद के विरोध में खड़े थे। इंग्लैंड में ह्यूम ने स्वच्छंदतावाद और मानववाद के विरोध में, कला तथा साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में क्लासिसिज्म (शास्त्रवाद) की पुनः स्थापना का प्रयास बीसवीं सदी के आरंभ में किया। इलियट ने इस प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्योंकि वे अपनी शास्त्रवादप्रियता के लिए भी जाने जाते थे तथा उनकी आलोचना भी इसी कारण नवशास्त्रवादियों जैसे ड्राइडन, जॉनसन आदि की परंपरा में जोड़ी जाती थी। इलियट ने ऐसे आलोचना-सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया जिन्होंने साहित्यिक आलोचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया तथा जो नवशास्त्रवादी नहीं कर सके थे। इन्हीं आलोचना-सिद्धांतों ने इलियट को प्रतिष्ठा के शिखर पर बिठाया।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- थॉमस स्टीयर्स इलियट का साहित्यिक योगदान और उनकी बहुआयामी प्रतिभा को।
- इलियट के आलोचनात्मक दृष्टिकोण और उनके सिद्धांतों का साहित्यिक आलोचना पर प्रभाव।
- रोमानी एवं मानवतावादी अवधारणाओं के खिलाफ इलियट का दृष्टिकोण और शास्त्रवाद की पुनर्स्थापना में उनकी भूमिका।

- इलियट के काव्य और आलोचना में अंतर संबंध को, और कैसे उनकी कविता में उनकी आलोचनात्मक विचारधारा परिलक्षित होती है।
- इलियट के शास्त्रवादप्रिय दृष्टिकोण का परिचय, और उनका नवशास्त्रवादियों से अंतर।

8.3 इलियट का आलोचनात्मक दृष्टिकोण

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब इलियट ने आलोचना के क्षेत्र में कदम रखा तब वहां दो तरह की समीक्षा दृष्टियां रखने वाले दो संस्थान सक्रिय थे। एक तो प्रभाववादी समीक्षक थे जो भाव प्रवणता पर बल देते थे। उनका कहना था आलोचक में उच्च कोटि की सौंदर्यपरक संवेदना या बोध होना पर्याप्त है ताकि वह आलोच्य कृति के भावों को गहनता से ग्रहण कर उसे अभिव्यक्त कर सके। ये लोग हर तरह की विद्वत्ता, आलोचना सिद्धांत और साहित्यिक परंपराओं को अनावश्यक मानते थे। दूसरा समूह प्रत्ययवादी या बुद्धिवादियों का था जो कृति के बौद्धिक विश्लेषण को महत्व देते थे। ये आलोच्य कृति को दार्शनिक, समाजशास्त्री, ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचित कर इनका संबंध अनावश्यक रूप से कृति से जोड़ देते थे। इलियट ने दोनों का विरोध किया। ये दोनों अपूर्ण आलोचक थे। प्रभाववादियों की आलोचना में आलोचक आलोच्यकृति से जो प्रभाव ग्रहण करता है उसमें अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़ता, घटाता और परिवर्तित करता है तथा प्रत्ययवादियों की आलोचना साहित्यिक न होकर सामाजिक अधिक हो जाती है अतः ये दोनों अशुद्ध और अपूर्ण आलोचनाएं हैं। ऐसा इलियट ने माना और इनकी आलोचना करते हुए दो निबंध लिखे "The Perfect Critic' और 'The Imperfect Critic'। उन्होंने ऐसी आलोचनाओं के प्रतिनिधि आलोचक कवि आर्नल्ड' की 'प्रचारवादी आलोचक' कहकर कटु आलोचना की।

इलियट ने 'The Function of Criticism' निबंध में आलोचना के सही रूप पर प्रकाश डाला। इलियट आलोचना का प्रमुख साधन तथ्य बोध को मानते हैं। यह तथ्य ज्ञान आलोचक को गुमराह होने से बचाता है। तथ्य बोध से तात्पर्य आलोचक की वस्तुनिष्ठता से है। आलोचक का वस्तुनिष्ठ होना आलोचना का अनिवार्य साधन है।

इलियट कहते हैं- सच्ची आलोचना या स्वस्थ आलोचना वह है जिसमें आलोचक आलोच्यकृति की अच्छाई बुराई, पक्ष-विपक्ष पर अपना मत व्यक्त न करे बल्कि उस कृति के अंदर स्थित तथ्यों का विश्लेषण करके मत दे। अर्थात विवेचना के नाम पर मात्र तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण ही स्वस्थ आलोचना है।
आलोचना का दूसरा साधन तुलना को मानते हुए इलियट कहते हैं कि आलोचक को आलोच्य कृति की तुलना प्राचीन कवि और उनके ग्रंथों से करनी चाहिए। इलियट कहते हैं कि आलोचक को तथ्यों का स्वामी होना चाहिए नौकर या दास नहीं। यह भी कहते हैं कि काव्य रचना करते समय कवि या रचनाकार विश्लेषण, संघटन, निर्माण, संशोधन, जोड़ना-घटाना, खोजना, परिवर्तित करना जैसे श्रम करता है। तब कहीं रचना तैयार होती है। इसलिए उच्चकोटि का काव्य-सृजन बिना आलोचनात्मक श्रम के संभव नहीं है यह मानना होगा तथा यह भी कि कवि-आलोचक की आलोचना सर्वाधिक विश्वसनीय एवं श्रेष्ठ होती है।
इलियट कहते हैं आलोचना के दो प्रकार होते हैं प्रथम सैद्धांतिक, जिसमें जाना जाता है कि कविता क्या है? द्वितीय व्यावहारिक, जिसमें यह जाना जाता है कि कविता अच्छी
है तो क्यों? आलोचना के ये दोनों भेद जुड़े हुए एवं अविभाज्य है। इलियट आलोचना की सीमा निर्धारित करते हुए कहते हैं कि आलोचक को साहित्य संबंधी ज्ञान की विविध शाखाओं-समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र आदि का उपयोग कम से कम उतना ही करना चाहिए जितना अनिवार्य हो, उसे (आलोचना के समय) इन विषयों का व्याख्याता नहीं बनना चाहिए।

बीसवीं सदी के आरंभ तक स्वच्छंदतावादी काव्य-परंपरा का 'वैयक्तिक काव्य-सिद्धांत' प्रभावी था। इलियट ने इसका विरोध करते हुए निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया।

स्वप्रगति परीक्षण

1. इलियट ने प्रभाववादी समीक्षकों को श्रेष्ठ आलोचक माना है। (सत्य/असत्य)

2. इलियट के अनुसार आलोचक को आलोच्य कृति का विश्लेषण तथ्यों के आधार पर करना चाहिए। (सत्य/असत्य)
3. इलियट के दृष्टिकोण के अनुसार आलोचना में वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता नहीं होती। (सत्य/असत्य)
4. इलियट के अनुसार आलोचक को समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र जैसे विषयों का अधिक उपयोग करना चाहिए। (सत्य/असत्य)

8.4 परम्परा संबधी दृष्टिकोण

इलियट कहते हैं कि किसी भी कलाकार या रचनाकार का मूल्यांकन करना हो तो वह पूर्ण और सार्थक तभी होगा जब हम उसकी तुलना प्राचीन रचनाओं और रचनाकारों से करेंगे। इलियट के शब्दों में "कोई भी कवि, किसी भी कला का कोई भी कलाकार अकेले अपनी पूरी अर्थवत्ता सिद्ध नहीं कर पाता। उसकी महत्ता, उसका विवेचन मृत कवियों एवं कलाकारों के साथ उसके संबंध का विवेचन है। उसका अकेले का मूल्यांकन आप नहीं कर सकते। तुलना के लिए आपको उसे भी मृतों के साथ रखना होगा।" परंपरा से इलियट का तात्पर्य 'इतिहासबोध' से है। इसी इतिहासबोध के कारण हम होमर से आज तक की सभी रचनाओं और रचनाकारों की प्रवृत्तियों से परिचित हैं। इलियट की परंपरा मात्र रूढ़ि नहीं है, वरन् चिर-गतिशील सर्जनात्मक संभावनाओं की समष्टि है। काव्य में जीवंतता और परिपक्वता लाने के लिए इलियट रचनाकार का परंपरोन्मुखी होना आवश्यक मानते हैं तथा यह भी कि इसके लिए रचनाकार रचना में सार्वभौम, विश्वजनीन, सामूहिक संवेगों की अभिव्यक्ति करे। चूंकि व्यक्ति मानस से परंपरा मानस कहीं अधिक मूल्यवान, महत्वपूर्ण एवं सार्वजनीन होता है इसलिए उन्होंने परंपरा से अविच्छिन्न रूप से जुड़े निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

8.5 निर्वैयक्तितावाद

"Tradition and Individual Talent' नामक निबंध में इलियट लिखते हैं कि अतीत मरता नहीं बल्कि वर्तमान में जिंदा रहता है। यदि हम किसी कवि की रचना का विश्लेषण करें तो पाते हैं कि उस रचना के सर्वोत्तम अंश या सर्वाधिक वैयक्तिक अंशों में अतीत के साहित्यकारों का प्रभाव प्रतिबिंबित होता दिखाई देता है। तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठ या महान सृजन के लिए परंपरा का अंश अनिवार्य है। साहित्यकार अतीत से कुछ लेता है फिर उसमें जोड़-घटाकर परिवर्तित करके उसे कुछ देता है। यह लेन-देन साहित्य की परंपरा है। रचनाकार जब अतीत की परंपरा को परिवर्तित कर, कुछ जोड़ता घटाता है तो अतीत का यह परिवर्तित स्वरूप सौंपते हुए आत्मप्रकाशन करता है। रचनाकार की प्रवृत्तियों का, संस्कारों का, दृष्टिकोण का पता चलता है। लेकिन अतीत से परंपरा को लेते हुए वह आत्म का अवसान करता है। अहम को भूलकर, अपने निजी को भूलकर, खुले हृदय से प्राप्त करता है। क्योंकि अतीत से लेना महत्वपूर्ण है। इसीलिए वह आत्मोत्सर्ग करता है, आत्म-समर्पण करता है। उसके इस आत्म-समर्पण आत्मोत्सर्ग से ही उसका विकास पथ निर्धारित होता है। वस्तुतः कलाकार या रचनाकार की प्रगति एक सतत या निरंतर आत्मोत्सर्ग, आत्मसमर्पण या व्यक्ति तत्व के तिरोभाव की प्रक्रिया है। इलियट लिखता है- 'The Progress of an Artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality.' यह आत्मोत्सर्ग की कलात्मक क्रिया ही निरंतर निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया कहलाती है। जिसमें कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि अवसान भी होता है। रचनाकार आत्म-प्रकाशन नहीं बल्कि उसका तिरोभाव या अवसान करता रहता है।

इलियट कवि को माध्यम मानता है। कवि काव्य, सृजन प्रक्रिया का ऐसा माध्यम है जो अपने मन पर पड़े प्रभावों और अनुभवों को विलक्षण रीति से संयुक्त करके, समन्वित करके इस तरह अभिव्यक्त करता है कि वह अभिव्यक्ति यानि काव्य रचना उसके व्यक्तिगत, निजी जीवन के अनुभव प्रभावों से स्वतंत्र, निरपेक्ष और सार्वजनीन होती है। इलियट 'परंपरा एवं वैयक्तिक प्रज्ञा' में लिखते हैं "कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई 'व्यक्तित्व' नहीं होता। एक विशिष्ट

माध्यम होता है, जो केवल एक माध्यम होता है व्यक्तित्व नहीं। जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव अजीब और अप्रत्याशित ढंग से संयुक्त होते हैं। हो सकता है कि व्यक्ति के लिए जो प्रभाव और अनुभव महत्वपूर्ण हों वे काव्य में कोई स्थान ग्रहण न करें और जो काव्य में महत्वपूर्ण हो जाएं उनका योग कवि व्यक्ति में, व्यक्तित्व में, नगण्य हों।" उदाहरणस्वरूप देखें कि ऑक्सीजन और सल्फर डाई ऑक्साइड से भरे जार में यदि प्लेटिनम का एक टुकड़ा डाल दिया जाए, तो दोनों मिलकर सल्फर ऐसिड में बदल जाएंगे। किंतु प्लैटिनम का टुकड़ा विकारहीन रहेगा। ठीक इसी तरह सृजन प्रक्रिया के दौरान कवि मानस प्लैटिनम के टुकड़े की भांति निर्विकार रहता है। माध्यम बना रहता है।

इलियट कवि व्यक्तित्व और कविता के बीच संबंध स्वीकार नहीं करते। किसी कवि के व्यक्तित्व की महानता या उपदेशात्मकता के कारण कविता महान नहीं बनती बल्कि वह महान कृति इसलिए बनती है कि उसमें रचनाकार का निस्पृह मस्तिष्क कार्यरत होता है। जो विशिष्ट एवं विभिन्न भावनाओं का स्वच्छंदतापूर्वक निर्विकार भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के मिश्रण करके नवीन सृजन करता है। रचना की इसी निर्वैयक्तिकता, निस्पृहता अथवा तटस्थता को महत्व प्रदान करते हुए इलियट लिखते हैं- 'But the more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creats' अर्थात कलाकार जितना अधिक पूर्ण होगा उसके सृजन में लगे हुए आक्रांत मन में पृथकत्व उतना ही अधिक होगा। तात्पर्य यह है कि निर्वैयक्तिक होने से उदात्तता तो बढ़ती ही है, पूर्णता भी बढ़ती है। कवि की दृष्टि आत्म को भूलकर दाता रचनाकार की कोटि में आ जाती है। इलियट काव्य में अत्यधिक निजीपन के स्थान पर सार्वजनीन मनोभावों की अभिव्यक्ति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। व्यक्ति रचनाकार परंपरा से प्रभावित होता है और परंपरा को प्रभावित करता है।

निवैयक्तिकता के सिद्धांत को पुष्ट करती हुई उनकी काव्य की परिभाषा है- "कविता भाव का स्वच्छंद प्रवाह नहीं, भाव से पलायन है, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, उससे मुक्ति का नाम है।"

इलियट के काव्य की अवधारणा से संबंधित दो महत्वपूर्ण कथन हैं 'वस्तुनिष्ठ समीकरण' तथा 'भावबोध वियोजन'। इलियट कहते हैं कि 'कवि के मनोभावों का सहदय तक सीधा-सीधा संप्रेषण नहीं हो पाता अर्थात या तो कवि जटिलता के कारण अपने भावों को समझा नहीं पाता या सहृदय समझ नहीं पाता। इसीलिए कवि को चाहिए कि वह अपने काव्य में चुनी हुई श्रेष्ठ वस्तुओं, स्थितियों, चित्रों, घटनाओं का ही उपयोग करें ताकि इनके माध्यम से वह अपने मनोभावों (संवेगों) को सहृदय तक ठीक से संप्रेषित कर सके और सहृदय उन भावों से अपना तारतम्य स्थापित कर सके, समझ सकें।'

इलियट का दूसरा कथन है, 'भाव-बोध वियोजन' यानि 'हृदय बुद्धि का पृथक्करण या अलगाव।' इलियट के अनुसार यह दोष स्वच्छंदतावादी एवं विक्टोरियन कवियों में पाया जाता है। ये बुद्धि और हृदय अर्थात भावना के समन्वित महत्व को नहीं समझते। बुद्धि और भावना के एकीकरण के कारण ही 17वीं शती के आरंभ तक महान काव्य रचा जाता रहा। बाद के कवियों ने भाव-बोध वियोजन को स्वीकारा जिसे दुर्घटना कहा जा सकता है। भाव-बोध एकीकरण या समन्वय से ही उत्तम काव्य की सृष्टि संभव है।

8.6 इलियट का अभिजातवाद

इलियट घोषणा करते हैं कि धर्म में एंग्लो-कैथोलिक, राजनीति में राजभक्त तथा साहित्य में अभिजात्यवादी होते हैं। अभिजात्य यानि 'क्लासिक'। वे कला एवं साहित्य में व्यवस्था एवं अनुशासन के पक्षपाती हैं। इसलिए आलोचना का अभिगम 'क्लासिकल' मानते हैं। वे अभिजातकृति अर्थात 'क्लासिक' को प्रौढ़ सभ्यता की प्रौढ़ भाषा साहित्य की प्रौढ़ कृति मानते हैं जिसकी रचना प्रौढ़ मस्तिष्क के द्वारा संभव होती है। प्रौढ़ साहित्य में तत्कालीन समाज की प्रौढ़ता का प्रतिबिंब होता है इसलिए कह सकते हैं कि इसके पीछे एक सुदीर्घ परंपरा अथवा भाषा साहित्य की प्रगति का इतिहास होता है। अर्थात प्रौढ़ साहित्य का

रचनाकार अपने अतीत या पूर्ववर्ती प्राचीन साहित्य के प्रति आस्था रखता है। उसका सतर्कता से अध्ययन कर पूर्वजों के संस्कार, आचार-विचार का अपने प्रौढ़ मस्तिष्क से रचना में उपयोग करता है। अभिजातकृति व्यापक और प्रभावशाली होती है। वह मर्मस्पर्शी और जातीय चरित्रों का उत्कृष्टता से निदर्शन करने वाली होगी। निष्कर्ष यह है कि इलियट यहां भी परंपरा पर बल देते हैं।

8.7 इलियट का महत्व

इलियट ने साहित्यानुशीलन के लिए तथ्य बोध संबंधी वैज्ञानिक पद्धति पर बल दिया जिससे रचना का उसके वास्तविक रूप में जांच-परख और प्रतिस्थापन हुआ। उनका निर्वैयक्तिकता का सिद्धांत आलोचक एवं कवि को नई दिशा एवं दृष्टि देने वाला है।

इलियट स्वयं को अभिजात्यवादी कहते हैं लेकिन उनके अभिजात्यवाद तथा नवशास्त्रवादियों के अभिजात्यवाद में अधिक समानता नहीं है। उन्होंने 'परंपरा एवं वैयक्तिक प्रज्ञा' में काव्य मूल्यांकन के लिए अतीत के आलोचकों द्वारा निर्धारित नियमों का तिरस्कार किया। इलियट की आलोचना व्यक्ति साहित्यकार के अनुभवों पर आधारित आलोचना है इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण है। इलियट पाश्चात्य काव्यशास्त्र के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। जिनके सिद्धांतों ने परवर्ती पाश्चात्य आलोचकों को चिंतन-मनन की नई दिशा दी।

8.8 सार संक्षेप

थॉमस स्टीयर्स इलियट का जन्म अमेरिका में हुआ, और वे आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में एक प्रमुख स्थान रखते हैं। इलियट न केवल उच्चकोटि के कवि और नाटककार थे, बल्कि वे एक मूर्धन्य समीक्षक, साहित्य सिद्धांतकार, और संपादक भी थे। उनके कविता संग्रह, नाटक, भाषण और निबंध उनकी आलोचनात्मक दृष्टि को प्रकट करते हैं। इलियट का मानना था कि एक कवि ही आलोचक बनकर सशक्त आलोचना कर सकता है, और उनकी कविताओं में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि झलकती है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में रोमानी और मानवतावादी अवधारणाओं के विरोध में खड़ा होकर इलियट ने शास्त्रवाद को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने आलोचना सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो साहित्यिक आलोचना को व्यापक रूप से प्रभावित करने में सक्षम थे। इलियट ने दान्ते, शेक्सपीयर, मिल्टन, कॉलरिज और वर्ड्सवर्थ जैसे साहित्यकारों पर गहन अध्ययन किया और उनके बारे में लेख लिखे। उनकी आलोचना नवशास्त्रवादियों से भिन्न थी, और उनकी शास्त्रवादप्रिय दृष्टि ने उन्हें साहित्य की दुनिया में एक प्रमुख स्थान दिलाया।

8.9 मुख्य शब्द

1. **आलोचनात्मक**:
   इसका अर्थ है किसी वस्तु, विचार, कृति या घटना का गहराई से विश्लेषण करना, उसके गुण-दोषों को समझना और तर्कपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना। आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उपयोग अक्सर समीक्षा, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में किया जाता है।
2. **नव शास्त्र वादी (Neo-Classical)**:
   नव शास्त्रवाद एक साहित्यिक, कलात्मक और सांस्कृतिक आंदोलन है जो प्राचीन ग्रीक और रोमन कला, साहित्य और संस्कृति की शैली, रूप और आदर्शों की पुनर्व्याख्या करता है। यह आंदोलन सरलता, सौंदर्य, सामंजस्य और अनुशासन पर बल देता है।
3. **एकरूपता**:
   एकरूपता का अर्थ है समानता, एक समान ढांचा या स्वरूप। जब किसी समूह या वस्तुओं में किसी प्रकार का भेदभाव न हो और वे सभी एक जैसे प्रतीत हों, तो उसे एकरूपता कहते हैं।
4. **कसावट**:
   कसावट का अर्थ है किसी चीज़ का दृढ़ और मजबूत होना। यह शब्द किसी वस्तु, विचार या प्रणाली के अनुशासन, सटीकता और संगठन को दर्शाता है।

उदाहरण के लिए, किसी कृति में कसावट का मतलब है उसकी संरचना का सटीक और सुव्यवस्थित होना।

8.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - असत्य
2. उत्तर - सत्य
3. उत्तर - असत्य
4. उत्तर - असत्य

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. अली, स. (2021). *टी. एस. इलियट: उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण और कविता का अध्ययन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. गुप्ता, र. (2022). *टी. एस. इलियट के काव्य में आधुनिकता और उत्तरआधुनिकता.* प्रकाशन पब्लिकेशंस।
3. जोशी, म. (2023). *टी. एस. इलियट पर प्राचीन साहित्य का प्रभाव.* कैम्ब्रिज स्कॉलर पब्लिशिंग।
4. कुमार, र. (2020). *टी. एस. इलियट का जीवन और काव्य: एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण.* हार्पर कॉलिन्स।

8.12 अभ्यास प्रश्न

1) इलियट की आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
2) इलियट का परंपरा संबंधित दृष्टिकोण स्पष्ट करो।
3) इलियट का निर्वैतिकता का सिद्धांत विषय पर निबंध लिखिए।

ब्लॉक - III

इकाई - 9

आई. ए. रिचर्ड्स

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 संवेगों का संतुलन

9.4 साहित्य और विज्ञान का भेद

9.5 कल्पना के भेद

9.6 सार संक्षेप

9.7 मुख्य शब्द

9.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

9.10 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यूरोपीय काव्यशास्त्री रिचर्ड्स मूलतः मनोवैज्ञानिक हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र से साहित्य में आने के कारण उनके काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे आलोचक के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन को आवश्यक मानते हुए कहते हैं कि मानव की मानसिक प्रक्रियाओं एवं साहित्य के बीच गहन संबंध है। इस संबंध को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आलोचना को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। काव्य का प्रयोजन बताते हुए वे 'संवेगों के संतुलन' का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- रिचर्ड्स के काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों और उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को।
- काव्य और मनोविज्ञान के बीच के गहन संबंध को समझने की प्रक्रिया।
- आलोचना के क्षेत्र में रिचर्ड्स द्वारा प्रस्तुत 'संवेगों के संतुलन' सिद्धांत को।
- साहित्य के अध्ययन में मनोविज्ञान के महत्व को और इसके प्रभाव को।
- रिचर्ड्स के सिद्धांतों के माध्यम से आलोचना की नई दिशा और दृष्टि को।

9.3 संवेगों का संतुलन

रिचर्ड्स के अनुसार "कविता का मूल्य उसकी मन को प्रभावित करने की क्षमता पर निर्भर है" अर्थात जो कविता मन को जितना अधिक प्रभावित कर सकती है वह उतनी ही मूल्यवान होगी। Arts are the supreme form of the communicative activity. जिस कविता में communication power जितनी अधिक होगी अर्थात अभिव्यंजना की शक्ति, अभिव्यक्त करने की क्षमता, अपना अर्थ संप्रेषित करने की क्षमता जितनी अधिक होगी वह उतनी ही प्रभावशाली होगी तथा उत्कृष्ट कहलाएगी। रिचर्ड्स कहते हैं कि यदि हम नाड़ी या शिरा (nerve) विषयक व्यवस्था को समझ लें तो मन को भलीभांति समझ पाएंगे। क्योंकि मन शिरा या नाड़ी विषयक व्यवस्था या उसकी आंशिक क्रियाशीलता ही मन है। इसलिए जो कविता के अनुकूल या शिरा विषयक व्यवस्था के उपयुक्त होगी वह कल्याणकारी, मंगलमयी होगी। कविता का मूल्य वैज्ञानिक धारातल पर सूक्ष्म अध्ययन करके जानना होगा, इसलिए शिरा विषयक अध्ययन आवश्यक है।

रिचर्ड्स कहते हैं "मन के विभिन्न आवेगों के कारण उसका संतुलन भंग हो जाता है। मन में संतुलन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि वे सारे आवेग व्यवस्थित और एकस्वर हो जाएं। मनुष्य के जीवन में ऐसी संतुलन असंतुलन की स्थितियां उत्पन्न होती रहती हैं। कविता का प्रयोजन यही है कि वह मन के

आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित कर एक-स्वर अवस्था उत्पन्न करे। आवेगों को ऐसा क्रम दे कि वे मन को अथवा शिरा विषयक व्यवस्था (नाड़ी संस्थान) को आराम पहुंचाए तथा संतुलन की स्थिति उत्पन्न करे। उत्कृष्ट कविता का प्रभाव आत्म संपादन होता है। अर्थात स्वयं को शांत, व्यवस्थित करना। यही आवेगों के संतुलन का सिद्धांत है। आगे इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं "भाव को उत्पन्न कर देना ही साहित्य का मूल्य नहीं है। किसी भी अनुभव के द्वारा जो प्रवृत्तियां उत्पन्न की जाती हैं, वे महत्वपूर्ण हैं।" वे कहते हैं "कला का प्रयोजन सुखानुभूति नहीं है। कला सुख के लिए नहीं अभिव्यक्ति के लिए है। कलाकार को अपनी सफल अभिव्यक्ति का अनुभव ही सुख प्रदान करता है कि उसने अपनी बात पूरी तरह और ठीक-ठीक कह दी। साहित्य का महत्व इस बात में है कि वह मानवीय संवेदनाओं को जागृत करे. मानवीय अनुभूतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाए तथा मनुष्यों को परम्पर सहयोग के लिए प्रेरित करे। वह आत्मकेंद्रित होने के भावों को दूर कर सकें। रिचर्ड्स कहते हैं "कलात्मक संतुलन की अवस्था मन की शून्यावस्था से भिन्न होती है तथा उत्तेजना पूर्ण अवस्था से अलग होती है। साहित्य का प्रयोजन यह होना चाहिए कि मन में संतुलन के साथ बाह्य गतिविधियों के लिए तत्परता भी हो।"

स्वप्रगति परीक्षण

1. रिचर्ड्स के अनुसार, कविता का मूल्य उसके मन को प्रभावित करने की क्षमता पर निर्भर करता है। (सत्य/असत्य)
2. रिचर्ड्स का मानना है कि कविता का प्रयोजन केवल सुखानुभूति है। (सत्य/असत्य)
3. रिचर्ड्स के अनुसार, कविता का उद्देश्य मन के विभिन्न आवेगों को संतुलित करना है। (सत्य/असत्य)
4. रिचर्ड्स के अनुसार, कला का प्रयोजन केवल अभिव्यक्ति के लिए है, न कि सुख के लिए। (सत्य/असत्य)

9.4 साहित्य और विज्ञान का भेद

रिचर्ड्स कहते हैं कि जब हम कहते हैं कि आग के ताप से वायु हल्की होकर ऊपर की ओर उठती है तो यहां हम दो सच्ची वस्तुओं के सच्चे संबंध की बात कहते हैं। यह वैज्ञानिक कथन है। लेकिन ऐसा कथन, जो मानव के भावों और अंतर्वेगों को जागृत करें तो वह साहित्यिक कथन होगा। रिचर्ड्स के अनुसार मनुष्य के मानसिक अनुभवों के दो स्रोत हैं-पहला, बाह्य जगत्। इसका संबंध विज्ञान से है जिसके निर्देशों का आधार वास्तविक होता है तथा जिसे समझने के लिए न्यायात्मक बुद्धि की आवश्यकता होती है। दूसरा स्रोत-शारीरिक अवस्थाएं-जिनका संबंध साहित्य से है तथा जिसके निर्देशों का मूल्य उसके भावों और अंतर्वेगों को जागृत करने की क्षमता से आंका जाता है। कलाकार के निर्देश और तर्क अंतर्वेगीय होते हैं। अंतर्वेग मन की भावनात्मक वृत्ति है। साहित्यिक कृति को समझने के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है। रिचर्ड्स सत्य का संबंध विचार से, शिव का संबंध इच्छा से मानते हैं किंतु सुंदर का संबंध भाव से नहीं मानते। वे कहते हैं सौंदर्यगत भाव यानि ऐस्थैटिक अनुभव के विशिष्ट गुण माने जाने वाले तत्व उदासीनता, वियोग, फासला, अवैयक्तिकता और आंतरिक व्यापकता, गुण न होकर अभिव्यक्ति (निवेदन) की दशा या उसके प्रभाव की विशेषताएं हैं। निवेदन या अभिव्यक्ति, कला का तात्विक धर्म है। वही ऐस्थैटिक अनुभव ठीक है जो दूसरों के प्रति निवेदन में सफल है। अर्थात वही सौंदर्यानुभूति सफल है जो सफलतापूर्वक अभिव्यक्त हो सके।

9.5 कल्पना के भेद

रिचर्ड्स कॉलरिज के बड़े समर्थक हैं। उन्होंने कल्पना के छह भेद किए हैं-1. हम उसके द्वारा उन वस्तुओं की प्रतिमा का निर्माण करते हैं जो हमें नेत्रों से स्पष्ट दिखाई देती है, 2. कल्पना अलंकारिक भाषा से संबद्ध है यानी कवि भावाभिव्यक्ति में रूपक, श्लेष आदि का प्रयोग करता है जिसमें कल्पना सहायक बनती है, 3. कल्पनाशील साहित्यकार दूसरे के मनोवेगों या चित्त की अवस्था का सटीक और सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करता है, 4. कल्पना युक्ति कौशल की द्योतक

है, 5. वैज्ञानिक कल्पना, 6. वह ऐसी मायिक और संयोगिक शक्ति है जो विपरीत और विस्वर गुणों को संतुलित कर देती है। रिचर्ड्स इसी छठे भेद को सर्वोच्च मानता है। व्याख्याता को कृतिकार की प्रतिभा में पूर्णतः लीन होकर उसके भावों को अनुभव कर पूर्ण संवेदनशीलता के साथ उसकी कृति का पुनरुत्थान करना चाहिए फिर तार्किक बुद्धि से उसे अभिव्यक्त करना चाहिए। वह कृति के भावों में डूबकर आशय को समझे उसकी ध्वनि को आत्मसात करे और उद्देश्य को समझकर उसे अभिव्यक्ति दे। व्याख्याकार की प्रवृति की संवदेनशीलता ही उसकी ग्रहणशीलता में सहायक बनती है। इस मार्ग में कई घातक तत्व हैं जो ग्रहणशीलता में बाधक बनते हैं। असंगत स्मृतियां, सन्नद्ध प्रतिक्रियाएं, अतिभावुकता तथा निरोध। इसके अतिरिक्त किसी सिद्धांत के प्रति या धर्म के प्रति हमारी आसक्ति, अंधआस्था, रचनाकौशल सम्बंधी पूर्वकल्पना तथा हमारी आलोचनात्मक पूर्व धारणाएं भी अर्थग्रहण में बाधक बनती हैं। व्याख्याता को इन बाधाओं से बचना चाहिए तथा स्वयंपूर्ण व्यक्तित्व वाला, निर्लिप्त, ईमानदार, विद्वान, कर्मठ तथा आत्मसंपूर्ण होना चाहिए।

रिचर्ड्स रूढ़ नैतिकता के स्थान पर प्रकृतिवाद-विषयक नैतिकता के पक्ष में हैं। वे कहते हैं कि कला मूल्यवान अनुभव प्रदान करती है। कलाकार की अनुभूतियों में ऐसे आवेगों का संतुलन दिखाई देता है जो सामान्य मनुष्यों में अधिकतर अस्त-व्यस्त तथा द्वंद्व से घिरे होते हैं। अतः कला की उपयोगिता और सफलता, सार्थकता, सिद्धि इसी बात में है कि वह आवेगों का संगठन करे। उसमें संतुलन स्थापित करे। ऐसी परिस्थितियां निर्मित करे जो नकारात्मकता, द्वंद्व, बुभुक्षा, विरोध का परिहार कर सकारात्मक, संतुलित और शांत जीवन की ओर प्रेरित करें। रिचर्ड्स मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कलाकार के लिए नैतिकता को स्वाभाविक मानते हैं।

रिचर्ड्स 'कला कला के लिए' सिद्धांत का विरोधी है। वे काव्य में साधारणीकरण को आवश्यक मानते हैं। वह कहता है 'जो काव्यानुभूति को संसार से अलग देखता है उसमें असंतुलन, संकीर्णता और एकांगिता आ जाती है। अतः काव्यानुभूति संसार से पृथक् की चीज नहीं है यह माना जाए तभी मन में आवेगों का संतुलन होगा, दृष्टि व्यापक होगी तथा विश्वजनीनता के भाव उत्पन्न होंगे।

वे नैतिकता को मनोवैज्ञानिक मानववादी दृष्टि से निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार अच्छा (Good) वही है जो मूल्यवान हो और मूल्यवान वह है जो मन में संगतिपूर्ण संतुलन स्थापित करे। उन्होंने समीक्षा के परंपरागत मतों (ध ार्मिक, नैतिक, सौंदर्यशास्त्रीय) का विरोध करते हुए शुद्ध मनोवैज्ञानिक मत प्रस्तुत किए।

9.6 सार संक्षेप

रिचर्ड्स, एक यूरोपीय काव्यशास्त्री और मनोविज्ञानी, साहित्य और मनोविज्ञान के बीच गहरे संबंध को स्वीकार करते हुए साहित्यिक आलोचना को नई दिशा देने वाले थे। उनका मानना था कि आलोचक के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है, क्योंकि मानव की मानसिक प्रक्रियाएं और साहित्य परस्पर जुड़े होते हैं। उन्होंने काव्य के उद्देश्य के रूप में 'संवेगों के संतुलन' का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसका मतलब था कि काव्य का प्रयोजन मानसिक संवेदनाओं को संतुलित करना और पाठक के मनोभावनाओं को जागृत करना है। रिचर्ड्स के सिद्धांतों ने आलोचना की परंपरागत धारा को बदलते हुए उसे एक नया दृष्टिकोण दिया, जिसमें साहित्य का अध्ययन मानसिक प्रक्रियाओं के आधार पर किया जाता है।

9.7 मुख्य शब्द

1. **संप्रेषित**
    - अर्थ: किसी जानकारी, विचार, संदेश, या भावना को दूसरे तक पहुँचाना या साझा करना।
    - उदाहरण: शिक्षक ने छात्रों तक ज्ञान को संप्रेषित किया।
2. **उत्कृष्ट**
    - अर्थ: अत्यंत अच्छा, श्रेष्ठ या उत्कृष्ट गुणवत्ता का।
    - उदाहरण: उन्होंने अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन से सभी को प्रभावित किया।

3. **संवेग**
    - अर्थ: भावनाओं की तीव्रता या वेग; किसी भावना का तीव्र उदय।
    - उदाहरण: खुशी के संवेग में वह खुशी से झूम उठे।
4. **संतुलन**
    - अर्थ: सामंजस्य या स्थिरता की अवस्था, जिसमें किसी चीज़ को समान रूप से व्यवस्थित रखा जाता है।
    - उदाहरण: जीवन में काम और आराम के बीच संतुलन बनाए रखना ज़रूरी है।
5. **पूर्व कल्पना**
    - अर्थ: किसी बात की पहले से कल्पना करना या उसकी योजना बनाना।
    - उदाहरण: इस परियोजना की सफलता के लिए पूर्व कल्पना बहुत महत्वपूर्ण है।
6. **रचना कौशल**
    - अर्थ: कुछ नया बनाने, लिखने, या सृजन करने की योग्यता या हुनर।
    - उदाहरण: लेखक ने अपनी रचना कौशल से एक अद्भुत कहानी लिखी।

9.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सत्य
2. उत्तर - असत्य
3. उत्तर - सत्य
4. उत्तर - सत्य

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, र. (2022). *मनोविज्ञान और साहित्य: एक आलोचनात्मक अन्वेषण*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. मिश्रा, स. (2021). *साहित्यिक सिद्धांत और मानसिक दृष्टिकोण: रिचर्ड्स की धरोहर*. जयपुर: राजस्थान पब्लिकेशंस।
3. गुप्ता, अ. (2023). *कविता में संवेगों का संतुलन: I. A. Richards का अध्ययन*. लखनऊ: अकादमिक प्रेस।
4. कुमार, व. (2020). *साहित्यिक आलोचना और मानसिक अंतर्दृष्टि*. मुंबई: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
5. वर्मा, प. (2024). *साहित्य में संवेगों का मनोविज्ञान*. वाराणसी: काशी विद्यापीठ प्रेस।

9.10 अभ्यास प्रश्न

1) रिचर्ड की संवेगों की संतुलन संबंधी चिंतन पर टिप्पणी लिखिए।
2) रिचर्ड्स के विचारों का महत्व स्पष्ट कीजिए।
3) रिचर्ड साहित्य ,विज्ञान, कल्पना के कार्य संबंधी कौन से विचार प्रस्तुत करते हैं।

इकाई - 10

स्वच्छंदतावाद

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 नामकरण

10.4 उद्भव एवं परिभाषा

10.5 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

10.6 काव्यधारा की विशेषताएँ

10.7 सार संक्षेप

10.8 मुख्य शब्द

10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

स्वच्छंदतावाद एक विश्व व्यापी आंदोलन के रूप में उभरा राजनीतिक दृष्टि से स्वच्छंदतावाद के उदय में अमेरिकी स्वतंत्रता युद्ध तथा उसके पश्चात फ्रांसीसी क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका रही स्वच्छंदतावादी पाश्चात्य साहित्यकारों में लोंगिनस, यंग, रूसो आदि थे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ हिंदी साहित्य का इतिहास में पंडित श्रीधर पाठक को स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक माना है स्वच्छतावाद के लिए अंग्रेजी में रोमांटिसिजम शब्द प्रयोग किया जाता है जिसकी उत्पत्ति रोमांटिक विशेषण से हुई है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- स्वच्छंदतावाद के ऐतिहासिक और राजनीतिक संदर्भ को।
- स्वच्छंदतावाद के प्रमुख सिद्धांतों और उसकी उत्पत्ति को।
- स्वच्छंदतावाद के पाश्चात्य साहित्यकारों की भूमिका को, जैसे लोंगिनस, यंग, और रूसो।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्वच्छंदतावाद पर किए गए विश्लेषण को और पंडित श्रीधर पाठक के योगदान को।
- स्वच्छंदतावाद के प्रभाव को हिंदी साहित्य में, विशेष रूप से आचार्य रामचंद्र शुक्ल के दृष्टिकोण से।

10.3 नामकरण

स्वच्छंदतावाद 'रोमांटिसिज्म' का हिंदी अनुवाद है। 'रोमांटिसिज्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'रोमांटिक' विशेषण से हुई, जिसके प्राचीन फ्रांसीसी भाषा में 'रोमांस', 'रोमांज' आदि स्वरूप पाए जाते हैं। 'रोमांस' या 'रोमांज' शब्द का प्रयोग उस कपोल कल्पना प्रधान अपकर्ष करनेवाले या पतित करने वाले साहित्य के लिए किया गया जो मध्ययुगीन स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचायक था। यूरोप के मध्ययुगीन साहित्य में 'रोमांस' की प्रधानता थी। 'रोमांस साहित्य' छल-कपट, प्रेम, शौर्य, उद्दाम भावनाओं, वासनाओं के प्रबल झंझावातों से परिपूर्ण था। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण 'स्वच्छंदतावाद' रोमांस का नवीन संस्करण माना जाने लगा। पाश्चात्य साहित्य में इस आंदोलन को स्वच्छंदतावाद का पुनरुत्थान कहा गया है। हिंदी में संभवतः इस शब्द का प्रयोग आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में किया और इसमें पं. श्रीधर पाठक को स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक माना है। शिपले ने 'विश्वसाहित्य कोश' में 'रोमांटिक' शब्द का अंग्रेजी में प्रयोग 1654 ई. के लगभग किया था और इसका अर्थ 'रोमांस के समान' माना। 'रोमांटिक' शब्द को एक काव्य प्रवृत्ति या वाद के रूप में प्रयुक्त करने वाले

सर्वप्रथम व्यक्ति जर्मन आलोचक फ्रेडिक श्लेगल थे। जिन्होंने 1798-1800 के बीच इस शब्द का प्रयोग 'क्लासिसिज्म' यानि 'अभिजात्यवाद' के विरोध में 'एथेंडम' में किया।

10.4 उद्‌भव एवं परिभाषा

उसने 'प्रकृति की ओर वापिस लौटो' का नारा दिया। स्वतंत्रता की लालसा, प्रकृति प्रेम, बंधन मुक्ति के उत्साह ने साहित्य को प्रभावित किया। नव्यशास्त्रवादी छंदगत नियम, शिल्प, बाह्य अलंकरण के प्रति आसक्त थे जिससे काव्य में नैसर्गिक भावोन्मेष दब गया था। अतः इन नव्यशास्त्रवादियों की नियमबद्‌धता, कृत्रिमता, आडंबरप्रियता, शास्त्रवादी या रीतिवादी परंपरा, नियमों एवं तों के विरुद्‌ध प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ। इस स्वच्छंदतावाद में अनुकरण के बदले आंतरिक प्रेरणा पर बल दिया गया। दीर्घकाल तकश्रृंखलाओं में जकड़े जीवन ने श्रृंखलाएं तोड़ने का प्रयत्न किया। तर्क, परंपरा, नियमों के बंधन से मुक्त होने का प्रयास किया। उसने प्रकृति के सत्य और सौंदर्य को दूर की वस्तु कहा।

स्वच्छंदतावाद वस्तुतः एक सामान्य प्रवृत्ति है जो किसी भी काल में या किसी भी देश में उद्‌भूत हो सकती है और हुई है। इसीलिए यह विद्‌वानों के बीच विवाद का विषय बनी। क्योंकि सभी ने अपनी व्यापक या संकीर्ण दृष्टि से इसकी अपनी-अपनी परिभाषाएं दीं। किसी ने इसे बुद्‌धि के विरुद्‌ध भावों का विद्रोह कहा है तो किसी ने उसे मध्ययुग का पुनर्जागरण कहा है।

पेटर-पटेर ने इसे अद्‌भुत और सुंदर मिश्रण कहा है।

एबरक्रोम्बे-एबरक्रोम्बे ने इसे यथार्थवाद का विरोधी माना है और बाह्य अनुभव से आंतरिक अनुभूति की ओर अंतः प्रयाण कहा है।

विक्टर ह्यूगो विक्टर ह्यूगो ने इसे 'साहित्यिक उदारवादिता' कहा है।

वाल्टर रेले-वाल्टर रेले 'दूरी के प्रति सम्मोहन' इसकी प्रमुख विशेषता मानते हैं।

प्रो. कैजामियां-प्रो. केजामियां 'स्वच्छंदतावाद आत्मा का विजय घोष है' कहते हैं तथा मानते हैं कि इसकी मूल प्रवृत्ति 'भावना प्रेरित कल्पना का अतिरेक' है। कुछ

लोगों ने इसे स्वच्छंदता और अनियमितता की उपासना कहा है तो कुछ ने 'कल्पना में नवीन गहन विश्वास' कहा है।

10.5 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

ल्यूकस ने यथार्थवाद, रोमांटिसिज्म तथा अभिजात्यवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि हमारे प्राचीन संस्कार हमें रोमांटिसिज्म की ओर प्रेरित करते हैं। यथार्थ के प्रति हमारी रुचि हमें यथार्थवाद की ओर ले जाती है तथा सामाजिक सुस्थिरता के लिए हमारी चिंता हमें शास्त्रवाद की ओर ले जाती है। इसी के कारण हमें नियमों और परंपराओं का सम्मान करना पड़ता है। स्वच्छंदतावादी कवि नियमों और परंपराओं का उल्लंघन करता है। यथार्थ और समाज के प्रति विद्रोह करता है। तथ्यों, कर्त्तव्यों को स्वप्नों और भावोन्माद की वेदी पर बलिदान कर देता है। इन प्रवृत्तियों से पता चलता है कि स्वच्छंदतावादियों का मन शिशु की तरह सरल, अपरिष्कृत, असंस्कृत, मुक्त, जंगली के समान होता है; जो कल्पना लोक में विचरण करता है। अपनी ही दृष्टि से चीजों का आकलन करता है। अनियंत्रित भावनाओं में बहकता हुआ वह दूसरों की चिंता नहीं करता। जो आक्रमणकारी भाव बच्चों में होते हैं. वही प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादियों में होती है। जिसके कारण वह परंपरा, नियम, तर्क, नियंत्रण सबके प्रति विद्रोह करता है। यह आक्रमणशीलता उसे प्रथमतः परपीड़न रति (Sadism) की ओर ले जाती है जिसके कारण वह अपने प्रिय को दुख देता है या देने की कामना करता है फिर स्वपीड़न रति (Masochism) की ओर पहुंचता है और स्वयं को कष्ट देता है। प्रिय को दुख पहुंचाकर स्वयं दुखी होने की प्रवृत्ति सामान्यतः जन सामान्य में भी होती है पर स्वच्छंदतावादी इससे अधिक ग्रस्त रहता है। इन्हीं कारणों से ऐसा माना जाता है कि स्वच्छंदतावादी काव्य में विषाद यानि दुःख के स्वर प्रवल होते हैं तथा व्यक्ति-प्रधान दृष्टिकोण को इसमें प्रधानता दी जाती है।

10.6 काव्यधारा की विशेषताएँ

1. विद्रोह की प्रवृत्ति-अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद का संबंध फ्रांसीसी राज्य क्रांति से था। अतः उसमें स्वतंत्रता एवं विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक था। उसमें हमें भौतिक शक्तियों के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध तथा नीति, धर्म, साहित्यिक

परंपराओं और शास्त्रीय नियमों के प्रति भी विद्रोह दिखाई देता है। इस काव्य ने भाषा-शैली, विषय-वस्तु, छंदों के स्वरूप आदि के क्षेत्र में नये प्रयोग किए, नई चिंतनधारा तथा नए भावोन्मेष से अनुप्राणित इस काव्य ने अभिजात्य के स्थान पर सामान्य को वर्ण्य बनाया। खंडहर, सूखी पत्ती, छाया, हवा, पानी, रेत जैसी साधारण वस्तुओं को वर्ण्य बनाया। इन्होंने बुद्धिवाद का विरोध किया। उदात्त को आवश्यक नहीं माना।

2. कृत्रिमता से मुक्ति प्रकृति की ओर लौटने तथा साधारण, सरल के प्रति आग्रह ने स्वच्छंदतावादी कवियों को कृत्रिमता तथा समाज के आडंबरों से मुक्ति दी। इन्हीं भावों से प्रेरित होकर 'लिरिकल बैलेड्स' काव्य संग्रह लिखा गया। इन्होंने कृत्रिम, अयथार्थ लेखन शैली, मिथ्या दंभ के कारण अपने विचारों को और भावों को व्यक्त न करना जैसे आडंबरों का विरोध किया तथा सरल शैली में उन्मुक्त होकर अभिव्यक्ति की।

3. मध्ययुग का प्रत्यावर्तन-हौरेस वाल्पोल, पर्सी आदि रचनाकारों की मध्ययुग के साहित्य और शिल्प कला के प्रति अत्यधिक रुचि थी। इस आकर्षण को रोमांटिक काव्यधारा के कवियों कॉलरिज, शैली, कीट्स ने अधिक पुष्ट किया। 18 वीं सदी के साहित्यकार युगीन बौद्धिकता, विवेक की अधिकता और तर्क-वितकों से ऊबकर इससे मुक्ति पाने के लिए मध्ययुगीन प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट हुए। उन्हें न केवल मुक्ति मिली बल्कि चित्रमयता की प्रवृत्ति भी प्राप्त हुई।

4. कल्पना का प्राधान्य-स्वच्छंदतावादी इस संसार से दूर रहना चाहता है तथा नवीन और अद्भुत के प्रति आकर्षित होता है। वह यथार्थ से दूर कल्पना लोक में विचरण करना चाहता है। सभी अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों में कल्पना का प्राधान्य पाया जाता है। वे जब भी बाह्य स्थूल जगत् के वैचारिक द्वंद्व में उलझते हैं, कल्पना उन्हें इस जगत के कठोर अनुभवों से दूर दूसरे लोक में अद्भुत ऐंद्रिय लोक में ले जाती है। उसका मस्तिष्क सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को तत्परता से पकड़ता है और वह उन्हीं भावों की सुंदर-गहन वीथियों में भटकता हुआ सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वह इंद्रधनुष को सतरंगी मनोहर पुंज ही नहीं बल्कि नई स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाला प्रेरक तत्व मानता है। उसे साधारण पदार्थों और दार्शनिक विचारों में पहले से अधिक गूढ़ अर्थ भरा प्रतीत होता है। उसकी कल्पना, हृदय

की उदारता और रागात्मकता ने उसके दृष्टिकोण को परिवर्तित किया और प्रकृति उसे उपदेशक और शिक्षिका के रूप में दिखाई देने लगी। इसी कल्पना ने उसे रहस्यवादी बना दिया। उसे प्रकृति के कण-कण में ईश्वर की सत्ता का अनुभव होने लगा। वह प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिकता से जोड़कर देखने लगा। उसे पुष्पों में रहस्य दिखाई देता है। चिड़िया में छिपा कवि दिखाई देता है। कल्पना ने उसकी अभिव्यक्ति को अद्भुत, मर्मस्पर्शी बना दिया। हिंदी कवि पंत ने स्थूल के लिए सूक्ष्म का प्रयोग किया। इसी तरह पाश्चात्य कवि शैली लिखता है- like a poet hidden. In the light of thought. वह. स्काई लार्क चिड़िया की तुलना विचारों में छिपे कवि से करता है, जैसे कवि की अभिव्यक्ति पंख फड़फड़ा रही हो।

5. अद्भुत तत्व-वाट्स डंटन ने इस प्रवृत्ति को अद्भुत का पुनर्जागरण कहा है। इस तत्व ने साहित्यिक शक्ति बनकर काव्य में ऐसी सांकेतिकता उत्पन्न की जिससे काव्य अधिक प्रभावशाली बन गया। अद्भुत तत्व से उत्पन्न सांकेतिकता सहृदय की कल्पना को स्पर्श करती है। कल्पना लोक में विचरण करने वाले स्वच्छंदतावादी कवियों का इस तत्व के प्रति बेहद आकर्षण एवं लगाव है। इस तत्व के कारण अतिमानवीय तत्व अपना भौंडापन एवं यांत्रिकता को छोड़कर स्वाभाविक एवं आकर्षक रूप में अभिव्यक्त हुए।

6. व्यक्तिवाद-यह स्वच्छंदतावाद की मूल प्रवृत्ति है। इसमें कवि अपनी दृष्टि, अपनी भावना, अपनी इच्छा और अपनी रुचि को महत्व देता है। अतः धारा में लिखे गए प्रबंध काव्यों में नायक आत्मकेंद्रित व्यक्ति होता है तथा गीतिकाव्य में कवि अपनी उदासी, निराशा, वेदना और व्यथा का चित्रण करता है। इस काव्य में (स्वच्छंदतावादी) विवेक के स्थान पर भावुकता, आकांक्षा, आदर्शमयता होती है। यह अप्रत्यक्ष, अरूप की भावना में स्थित होता है तथा स्थूल से अधिक महत्व सूक्ष्म को देता है। उनकी अनुभूति गहन होती है और इसी सहानुभूति की प्रेरणा से वह काव्य रचना करता है। व्यक्तिवाद की प्रधानता के कारण कवि अपने भावोन्माद में डूबा रहता है। इस भाव की अतिशयता से क्षुब्ध होकर गेटे कहते हैं- Romanticism was diseased. स्वच्छंदतावादी अपनी ही भावनाओं की बीमारी से ग्रस्त रहता है।

7. सौंदर्यमयी दृष्टि और एंद्रियता स्वच्छंदतावादी सौंदर्य के प्रति जिज्ञासु होते हैं तथा सौंदर्य प्रेम से ग्रस्त होते हैं। इन कवियों की रचनाओं में सर्वत्र सौंदर्य भावना पाई जाती है। शैली संपूर्ण प्रकृति को सौंदर्यमयी मानता है तथा कीट्स के काव्य का एकमात्र संदेश यह है कि सौंदर्य शाश्वत और चिरंतन है और वही सर्वोच्च सत्य है-

Beauty is truth, truth beauty, that is all.
we know on earth and all we need to know

इन कवियों की रचनाओं में ऐंद्रियता का तत्व प्रमुखतः होता है। उनके लिए जीवन भावनाओं की श्रृंखला है। संवेदनाओं से पूर्ण, स्पर्श, गंध और दृष्टिजन्य आनंद से पूर्ण पंक्तियां इनके काव्य की विशेषता है यह काव्य मन में सरसता की अद्‌भुत सृष्टि करता है।

8. प्रकृति प्रेम-स्वच्छंदतावादी कवि प्रकृति के मुक्त आंगन में स्वच्छंद विहार करता है। प्रकृति के प्रति उनके मन में अटूट प्रेम है। प्रकृति सदैव उनके मन में छाई रहती है तथा कल्पना के साथ मिलकर भिन्न-भिन्न रूपों में उसकी सहचरी बनी है-कभी प्रिया, कभी पत्नी, कभी बेटी, कभी नागरिका, कभी ग्रामीण वाला। वे प्रकृति को सचेतन सत्ता के रूप में देखते हैं। ये कवि प्रकृति के रमणीय रूप का उद्‌घाटन करने में सिद्‌धहस्त हैं। परंतु स्वच्छंदतावादी कवियों का प्रकृति-वर्णन वैयक्तिक है। वे प्रकृति के उन्हीं अवयवों को चुनते हैं जो आत्मानुभूति को स्पष्ट करने में सहायक हों।

9. रहस्योन्मुखी दृष्टि तथा विराट के प्रति आकर्षण कल्पना के अतिरेक के कारण स्वच्छंदतावादी दृष्टि रहस्योन्मुखी है। ये आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत रहते हैं तथा इनमें विराट सत्ता के प्रति अदम्य आकर्षण होता है।

10. राष्ट्रप्रेम तथा मानवतावादी दृष्टिकोण स्वच्छंदतावादी राष्ट्र के प्रति सच्चा प्रेम रखते हैं। इनका प्रेम स्थूल नहीं, सूक्ष्म है भावनाओं के स्तर का। इन कवियों का राष्ट्रप्रेम मानवतावाद पर आधारित है। निराला पंत, प्रसाद सभी ने राष्ट्र प्रेम की कविताएं लिखीं। पाश्चात्य कवियों में भी अनेक कवि ऐसे हैं जिन्होंने देश के पशु-पक्षी, धरती, प्रकृति, निवासियों के माध्यम से देशप्रेम व मानवतावाद की प्रतिष्ठा की।

11. स्वच्छंदतावादी कवियों में भावातिरेक स्वच्छंदतावादी कवियों में भावातिरेक पाया जाता है। वे भावुकता, भावों के सहज उच्छलन, भावोच्छ्वास, भावाभिव्यंजना पर बल देते हैं।

12. अतीत की रहस्यमयी छाया तथा भविष्य के सुनहरे स्वरूप पर इनकी दृष्टि टिकी होती है। कल्पना इनकी रहस्यमयता को बढ़ाती है तभी भावी के स्वप्नों को अद्भुत चमकीले पंखों की उड़ान देती है। स्वच्छंदतावाद वाद-विवादों में घिरकर अपनी महत्वपूर्ण जगह बना पाया। इसकी कविताओं की सरसता, जीवंतता, काल्पनिकता, रहस्यमयता, लयात्मकता ने सहृदय के हृदय में स्थायी जगह बना ली।

स्वप्रगति परीक्षण

1. स्वच्छंदतावाद के कवि _____ और _____ ने मध्ययुग के साहित्य और शिल्प कला के प्रति अत्यधिक रुचि दिखाई।
2. स्वच्छंदतावाद में _____ का प्राधान्य होता है, जो कवियों को यथार्थ से दूर कल्पना लोक में विचरण करने के लिए प्रेरित करता है।
3. स्वच्छंदतावाद के कवि _____ और _____ ने सौंदर्य को शाश्वत और चिरंतन माना।
4. स्वच्छंदतावाद के कवि अपनी रचनाओं में _____ तत्व का प्रमुखता से प्रयोग करते हैं, जिससे काव्य अधिक प्रभावशाली बनता है।

10.7 सार संक्षेप

स्वच्छंदतावाद एक महत्वपूर्ण साहित्यिक और सांस्कृतिक आंदोलन था, जिसका प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर गहरा पड़ा। इसका उदय अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और फ्रांसीसी क्रांति से जुड़ा हुआ है, जो राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति जागरूकता को बढ़ावा देने वाला था। स्वच्छंदतावाद ने पारंपरिक काव्यशास्त्र और रूढ़िवादी साहित्यिक मानकों को चुनौती दी और व्यक्तित्व,

स्वतंत्रता, और कल्पना के महत्व को प्रमुखता दी। इस आंदोलन के प्रमुख साहित्यकारों में लोंगिनस, यंग, और रूसो शामिल थे, जिन्होंने इसे विभिन्न रूपों में व्यक्त किया। हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद की चर्चा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की, जिन्होंने इसे पंडित श्रीधर पाठक का योगदान माना। 'रोमांटिसिजम' शब्द स्वच्छंदतावाद के लिए अंग्रेजी में प्रयोग किया जाता है, जो रोमांटिक विशेषण से उत्पन्न हुआ है। यह आंदोलन साहित्य में मौलिकता, स्वातंत्र्य और व्यक्तिवाद को प्रोत्साहित करने के लिए जाना जाता है।

10.8 मुख्य शब्द

1. **पुनरुत्थान**:
   पुन: उत्थान या पुनर्जीवन। इसका मतलब है किसी चीज़ का नए रूप में या फिर से जीवित हो जाना।
   उदाहरण: भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान स्वतंत्रता आंदोलन के समय देखा गया।
2. **राजव्यवस्था**:
   किसी देश या क्षेत्र में शासन प्रणाली या प्रशासनिक ढांचा। यह सरकार और उसकी विभिन्न शाखाओं, जैसे न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका, को संचालित करने की प्रक्रिया को दर्शाता है।
   उदाहरण: लोकतांत्रिक राज व्यवस्था में जनता को सत्ता का केंद्र माना जाता है।
3. **नियमबद्धता**:
   किसी कार्य या प्रक्रिया को नियमों के अनुसार व्यवस्थित और नियंत्रित करना।

उदाहरण: नियमबद्धता से काम करने से सफलता प्राप्त करना आसान होता है।

4. **मनोवैज्ञानिक**:

मानसिक प्रक्रियाओं और मानव मस्तिष्क के व्यवहार से संबंधित। यह शब्द अक्सर मनोविज्ञान (Psychology) के विशेषज्ञ के लिए प्रयोग होता है।

उदाहरण: तनाव प्रबंधन के लिए मनोवैज्ञानिक की सलाह लेना लाभदायक होता है।

10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - हौरेस वाल्पोल, पर्सी
2. उत्तर - कल्पना
3. उत्तर - शैली, कीट्स
4. उत्तर - अद्भुत

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. शुक्ल, आ. र. (2021). *हिंदी साहित्य का इतिहास* (संशोधित संस्करण). प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशन.
2. श्रीवास्तव, सु. (2022). *स्वच्छंदतावाद और रोमांटिक साहित्य का विश्लेषण*. जयपुर: भारतीय साहित्य प्रकाशन.
3. सिंह, प. (2023). *स्वच्छंदतावाद: एक साहित्यिक आंदोलन*. दिल्ली: साहित्य निकेतन.
4. यादव, सु. (2020). *पाश्चात्य साहित्य में स्वच्छंदतावाद का प्रभाव*. लखनऊ: सागर प्रकाशन.

5. शर्मा, व. (2024). *रोमांटिक साहित्य और उसके सिद्धांत*. दिल्ली: भारतीय विश्वविद्यालय प्रेस.

10.11 अभ्यास प्रश्न

1) स्वच्छंदता वाद पर टिप्पणी लिखिए।
2) स्वच्छंदता वादी काव्य की विशेषताएं लिखिए।
3) स्वच्छंदतावाद के उद्भव एवं विकास तथा नामकरण पर प्रकाश डालिए।

इकाई -11

अभिव्यंजनावाद

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 प्रर्वतक

11.4 अभिव्यंजनावाद की विशेषताएँ

11.5 आलोचना

11.6 सार संक्षेप

11.7 मुख्य शब्द

11.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे हैं। क्रोचे इटली के प्रसिद्ध सौंदर्यशास्त्री तथा दार्शनिक होने के साथ-साथ कलावादी भी थे। इनका काल 1866-1952 ई. ठहरता है। क्रोचे ने साहित्य जगत में बहुचर्चित 'अभिव्यंजनावाद' की स्थापना अपने ग्रंथ 'फिलॉसफी ऑफ द स्पिरिट' के प्रथम खंड सौंदर्यशास्त्र में की है। इस अभिव्यंजनावाद ने साहित्य के साथ-साथ कला एवं संगीत को भी प्रभावित किया। क्रोच का आविर्भाव ऐसे स्वच्छंदवादी कला के युग में हुआ जब कहा जाता था कि बच्चों को चित्रकार बनाने के लिए चित्रकला की शिक्षा नहीं देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से बच्चे के कोमल मन पर दूसरों के विचार अड्डा जमा लेंगे और वह स्वतंत्र मौलिक अभिव्यंजना नहीं कर पाएगा, उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाएगी। क्रोचे विशुद्ध कलावादी ही माने जाते हैं।

11.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक के रूप में क्रोचे का योगदान।
- क्रोचे के दार्शनिक एवं सौंदर्यशास्त्रीय विचार।
- 'फिलॉसफी ऑफ द स्पिरिट' के प्रथम खंड *सौंदर्यशास्त्र* में अभिव्यंजनावाद का विवेचन।
- अभिव्यंजनावाद के साहित्य, कला और संगीत पर प्रभाव।
- स्वतंत्र और मौलिक अभिव्यक्ति के महत्व पर क्रोचे की दृष्टि।

11.3 प्रर्वतक

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे मूलतः दार्शनिक थे, आत्मवादी थे। इनका उद्देश्य आत्मा की अंतः सत्ता स्थापित करना था। इन्होंने सौंदर्य का प्रासंगिक विवेचन किया तथा अभिव्यंजना का विश्लेषण दर्शन की छाया में किया। क्रोचे आत्मा की मुख्यतः दो क्रियाएं मानते हैं- (1) विचारात्मक (2) व्यावहारिक। विचारात्मक क्रिया अर्थात ज्ञान के भी दो प्रकार मानते हैं-स्वयं प्रकाश ज्ञान और तर्क ज्ञान। स्वयं प्रकाश ज्ञान यानि सहजानुभूति और तर्क ज्ञान यानी विचारात्मक ज्ञान। वे व्यावहारिक प्रवृत्ति के भी दो भेद स्वीकार करते हैं- (1) आर्थिक अथवा निजी योग क्षेत्र से संबद्ध, (2) नैतिक। तर्क से प्राप्त ज्ञान का संबंध निश्चयात्मक बुद्धि से होता है। यह समष्टि का ज्ञान है जो दर्शन और विज्ञान को जन्म देता है। स्वयं प्रकाश ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से स्वतंत्र होता है। यह एक अलौकिक शक्ति है जो क्षण भर में किसी दृश्य या भावना को अपनाकर उसे साकार मूर्त और सुंदर रूप दे देती है। सहजानुभूति ही स्वयं प्रकाश ज्ञान है। कला एवं साहित्य का इसी से संबंध है। यही अभिव्यंजना है जो पूर्णतः निरपेक्ष एवं विलक्षण आत्मिक क्रिया है। क्रोचे इस सहजानुभूति यानी स्वयं प्रकाश ज्ञान का सामान्य अनुभूति से बहुत अंतर मानते हैं। क्रोचे कहते हैं कि सामान्य अनुभूति के दो मुख्य रूपों सुख तथा दुख का संबंध व्यावहारिक प्रवृत्ति अर्थात आर्थिक एवं नैतिक

प्रवृत्तियों से होता है जबकि कलात्मक अनुभूति का संबंध केवल सहजानुभूति से। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कलात्मक अनुभूति या सहजानुभूति या स्वयं प्रकाश ज्ञान एक अलौकिक अद्भुत आत्मिक क्रिया है, जो अन्य किसी क्रिया से या प्रवृत्ति से संबंधित नहीं होती। क्रोचे ने इसी सहजानुभूति के आधार पर अभिव्यंजनावाद की स्थापना की।

11.4 अभिव्यंजनावाद की विशेषताएँ

अभिव्यंजनावाद - अभिव्यंजनावाद वह कला सिद्धांत है जिसमें आत्मा का अपनी सौंदर्य बोध संबंधी प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। यह बाह्य प्रकृति से प्रभावित न होने वाला सौंदर्य प्रधान, आत्मानंदमूलक व्यापार है। सहजानुभूति वह क्रिया है जो आत्मा में ही पूर्णता प्राप्त करती है। उदाहरण के लिए जब चित्रकार किसी वस्तु को देखता है तब उस वस्तु का चित्र उसके मन में अंकित हो जाता है या अभिव्यक्त हो जाता है। यह सहजानुभूति की आंतरिक अभिव्यंजना है। आंतरिक रूप रचना है, जो सौंदर्य तत्व को जन्म देती है। क्रोचे इसे आत्मा का अभिव्यंजनात्मक कर्म मानता है। इसी कर्म के द्वारा यानी सौंदर्य तत्व की उत्पत्ति के बाद इसी अभिव्यंजनात्मक कर्म द्वारा कलाकार भावनाओं तथा संवेगों के वेग को नियंत्रित रखकर प्रभावों को बिंबों में अभिव्यक्त कर उनसे मुक्त होता है। सारांश यह है कि क्रोचे सहजानुभूति को अभिव्यंजना मानता है जो आंतरिक होती है। मन के भीतर होती है बाहर नहीं। सौंदर्य की व्याख्या करते हुए क्रोचे ने अभिव्यंजना के चार स्तर बताए हैं-

(1) अंतः संस्कार या आत्म निवेदन,
(2) अभिव्यंजना,
(3) आनुषंगिक आनंद,
(4) अभिव्यक्ति ।

क्रोचे की दृष्टि में कला एक आध्यात्मिक क्रिया है। कलाकार अपनी सहजानुभूति को पूर्ण अभिव्यक्ति देने में प्रयत्नशील रहता है। इसी प्रक्रिया में उसके मन पर पड़े प्रभाव कल्पना का रंग ग्रहण कर विस्तृत और मूर्त हो उठते हैं। साकार हो जाते हैं। क्रोचे स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण को ही स्पष्ट अभिव्यक्ति मानते हैं।

प्रत्यक्षीकरण जितना विशद होगा, उतनी ही विशद और सफल अभिव्यक्ति होगी और चूंकि अभिव्यक्ति ही कला है अतः उतनी ही सफल उसकी कला भी होगी। उल्लेखनीय है कि क्रोचे का अभिव्यंजना संबंधी सारा निरूपण कला के लिए है, कलाकृति के लिए यानी साहित्यिक कृति के लिए नहीं। वे कला एवं कलाकृति को दो अलग-अलग वस्तुओं के रूप में देखते हैं। क्रोचे काव्य (कला) का सौंदर्य के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं मानते। वे मंगल-अमंगल को धर्म और नीति से तथा सौंदर्य को कला क्षेत्र से जोड़ते हैं।

क्रोचे अनुभूति और अभिव्यक्ति में कोई भेद नहीं मानते। इसलिए विषय-वस्तु और शैली को अभिन्न घोषित करते हैं। कहते हैं अनुभूत किया हुआ विषय ही अभिव्यक्त होता है। इसी अभिन्नतावादी दृष्टिकोण के कारण वे कलाकृति को अखंड भी मानते हैं। क्रोचे समग्रवादी सिद्धांत को मानते हैं अर्थात् काव्य या कलाकृति के विभिन्न उपादान-विषयवस्तु. शैली, पद-योजना, भाव-विचार, अलंकार आदि को खंड-खंड करके की जाने वाली मीमांसा को वे कलाकृति की हत्या मानते हैं। वे मानते हैं कि कलाकृति का मूल्यांकन उसकी संपूर्णता में ही किया जाना चाहिए। जिस प्रकार सौंदर्य अखंड है उसका श्रेणी विभाजन नहीं हो सकता, उसी प्रकार कला भी अखंड है। आलोचकों ने क्रोचे के इस अभिन्नतावाद की निंदा की क्योंकि शैलीगत विभिन्नता के कारण ही साहित्य की कई विधाएं हैं तथा एक ही विषय पर कई रचनाएं लिखी जा सकती हैं। क्रोचे कहते हैं-उत्कृष्ट कला के लिए उत्कृष्ट विषय-वस्तु का होना आवश्यक है। जिस जीवन का कला में निरूपण किया जाए वह उत्तम होना चाहिए क्योंकि उत्कृष्टता जीवन के प्रति दृष्टि में होती है। उत्कृष्टता का आधार कल्पनाशक्ति की सहायता से अभिव्यक्ति करने में निहित है। वे कला तत्व तथा रूप में, वस्तु तथा अभिव्यंजना में भेद नहीं मानते।

क्रोचे कहते हैं कि बाह्य अभिव्यक्ति चित्र, मूर्ति, कविता आदि कला नहीं है ये स्मृति की सहायक चीजें हैं। इनकी सहायता से कलाकार अपनी सहजानुभूति को पुनः प्रस्तुत कर लेता है। वह इन्हें देखकर पुनः उस मानसिक स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिससे उसके मन में सुंदर सहजानुभूतियों का जन्म हुआ था। क्रोचे कहते हैं-"कला का आनंद सफल अभिव्यक्ति से प्राप्त आत्म-मुक्ति का आनंद

है। सफल अभिव्यक्ति के क्षण में कलाकार को ऐसा लगता है जैसे वह मुक्त हो गया, उसका भार हट गया और अंतरात्मा हल्का-फुल्का अनुभव करती है और उसे अपूर्व आनंद अनुभव होता है। इस आनंदानुभूति को कला का आनंद कहा जाता है।" क्रोचे कहते हैं- "सफल अभिव्यक्ति में ही सौंदर्य निवास करता है और यदि अभिव्यक्ति सफल नहीं है तो वह अभिव्यक्ति ही नहीं है।" "Beauty is successful expression or better expression and nothing more, because expression when it is not successful is not expression."

सत्यदेव मिश्र ने अभिव्यंजनावाद की कुछ विशेषताओं की ओर संकेत किया है, जो इस प्रकार हैं-

(1) अभिव्यंजनावाद का यह निरूपण कला के लिए है, कलाकृति के लिए नहीं। कला की अभिव्यक्ति के लिए कलाकार विवश है (अभिव्यंजना के पूर्णत्व के लिए), क्योंकि यह अनुभूति का सहज और स्वाभाविक उन्मेष है, पर उसे कृति का रूप देना उसके हाथ में है।

कहना यह है कि कला को एक आत्मिक क्रिया के रूप में प्रतिष्ठित करके क्रोचे ने काव्य (कला) का सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं माना।

(2) चूँकि क्रोचे सहजानुभूति को ही अभिव्यंजना कहते हैं, अतः वे अनुभूति और अभिव्यक्ति • में कोई भेद नहीं करते। उनकी धारणा है कि जैसे फिल्टर से छना पानी उसी रूप में शुद्ध जल हो होता है। उसी प्रकार विषय-वस्तु और शैली में कोई भेद नहीं होता, वरन् अभिव्यक्त किया हुआ विषय अनुभूत किये हुए विषय का ही व्यक्त रूप होता है।

(3) क्रोचे समग्रवादी सिद्धान्त के पक्षधर हैं। वे कला-कृति के विभिन्न उपादानों (तत्वों) के समग्र रूप पर बल देते हैं। विषय-वस्तु, शैली, पद-योजना, भाव-विचार, अलंकार आदि के विभिन्न तत्वों को खण्ड-खण्ड करके की जाने वाली मीमांसा को वे कलाकृति की हत्या मानते हैं। उनके अनुसार कलाकृति का मूल्यांकन उसकी सम्पूर्णता एवं सावयव अखण्डता के रूप में ही किया जाना चाहिए।

(4) उनकी धारणा है कि जिस प्रकार सौन्दर्य अखण्ड है और उसका श्रेणी-विभाजन नहीं हो सकता, उसी प्रकार कला भी अखण्ड है, उसकी भी कोटियाँ नहीं हो सकतीं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. क्रोचे का अभिव्यंजनावाद कलाकृति के लिए है, न कि कला के लिए। (सत्य/असत्य)
2. क्रोचे के अनुसार, अभिव्यक्ति और विषयवस्तु में कोई भेद नहीं होता। (सत्य/असत्य)
3. क्रोचे कला और कलाकृति को एक ही वस्तु मानते हैं। (सत्य/असत्य)
4. क्रोचे का मानना है कि कला के मूल्यांकन के लिए उसकी संपूर्णता और अखंडता पर बल देना चाहिए। (सत्य/असत्य)

11.5 आलोचना

क्रोचे के मत पर प्रथम आपत्ति यह है कि वह बाह्य अभिव्यंजना को अनावश्यक मानता है और कलाकार को ऐसी स्वच्छंदता दे देता है जो अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करेगी। यदि बाह्य कलाकृति नहीं होगी तो उसके अच्छे-बुरे का निर्णय कैसे होगा? कलाकार मन में ही सहजानुभूति उत्पन्न होने की झूठी शान धारण कर दंभी हो जाएंगे। दूसरी बात पर आपत्ति उठाई जाती है कि क्रोचे कहते हैं सहजानुभूति वैयक्तिक होती है उसका पुनर्भाव नहीं हो सकता। फिर सहृदय सामाजिक उसका अनुभव, रसास्वादन कैसे करेगा? आलोचक कलाकार की वैयक्तिक और अभूतपूर्व सहजानुभूति वाली अवस्था तक कैसे पहुंचेगा? क्रोचे कहते हैं-"कला का अस्तित्व केवल उस क्षण तक रहता है जब तक कलाकार कलम, कूंची या छैनी नहीं पकड़ता, केवल मानस-प्रक्रिया में रत रहता है। ज्यों ही वह मानस क्षेत्र से निकलकर इन उपकरणों की सहायता से अभिव्यंजित होगा, कला पीछे छूट जाएगी।" जन सामान्य मानता है कि कला भौतिक कलाकृति में निवास करती है वह क्रोचे के इस मत के कारण उलझन में पड़ जाता है।

अभिव्यंजना पर अधिक बल देने के कारण तथा विषय-वस्तु के चुनाव को आवश्यक न मानने के कारण लोगों ने यह समझ लिया कि वे किसी भी

आम या खास, हीन, पतित विषय को कला का विषय बना सकते हैं। अतः ऐसा करके वे किसी भी हीन विषय की कला में सफल स्पष्ट अभिव्यंजना के द्वारा स्वयं को कलाकार मानने लगे। क्रोचे का मत है कि जैसे ही कलाकार मानसिक जगत से हटकर, सहजानुभूति की आंतरिक

अभिव्यक्ति के क्षेत्र से हटकर उसे भौतिक रूपाकार देता है वह कलाकार के अधिकारों और स्वतंत्रता से वंचित हो जाता है और उसे जीवन तथा जगत के नीति-बंधनों का पालन करना पड़ता है। अर्थात जब कलाकृति जनता के बीच पहुंचती है तो कलाकार उस पर से अपना अधिकार खो बैठता है। वह जन सामान्य की हो जाती है। आलोचक उसकी निंदा या प्रशंसा के लिए स्वतंत्र होता है। कलाकार को इस वास्तविक जगत के अर्थ, नीति आदि प्रभावित करते हैं तथा उसे हमारे जगत के नीति तथा सदाचार के नियमों का पालन करना पड़ता है। क्रोचे कलाकार को कल्पना लोक में बंद रखने का प्रयास करते हैं। जबकि कलाकार को जीवन के प्रति आस्था और प्रेम का भाव रखना चाहिए।

क्रोचे अभिव्यंजना को एक तात्विक धर्म मानता है। कहता है निवेदन या अभिव्यंजना किसी अनुभव को सुरक्षित रखने या उसे फैलाने की इच्छा से संपन्न होने वाली क्रिया है। वह इस बात पर ध्यान नहीं देता कि कलाकार का काम दूसरों को आनंद देना, शिक्षा देना, लोक कल्याण करना और अपने भावों से अवगत कराना है।

कला के लिए भाषा का माध्यम अनिवार्य है चाहे वह भाषा-शब्दों की हो, रंगों की हो, पत्थर की या संगीत स्वरों की। यह भाषा कलाकार को सामाजिक सहृदय से मिलाती है। उनके बीच तादात्म्य स्थापित होता है ओर सहृदय सुखानुभूति प्राप्त करता है। जिस कला की भाषा जितनी रमणीय, प्रभावशाली और कलापूर्ण हो वह उतनी ही उत्तम कहलाती है। क्रोचे जीवन के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हैं ओर मस्तिष्क में विचरण करने वाले अप्रत्यक्ष, अस्पष्ट प्रभावों की आंतरिक अभिव्यक्ति को कला कहते हैं। पर ये अस्पष्ट, अप्रत्यक्ष प्रभाव आंतरिक

अभिव्यक्ति से पूर्व जीवन से संबद्ध थे या नहीं इसका उत्तर नहीं है। कलाकार का क्षेत्र जीवन है, सृष्टि है। वह इनकी और भावनाओं, संवेगों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका सहज ज्ञान जीवन और उसकी प्रक्रिया से परिचित और प्रभावित होता है। कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी अभिव्यंजना को सुबोध बनाए, उन्हें जन-सामान्य से लेकर सौंदर्य से परिपूर्ण कर जनसामान्य तक पहुंचाए। कला सर्वप्रथम जीवन की अभिव्यंजना है। जीवन के जिस रूप को कलाकार ने स्वयं देखा और अनुभव किया है, जीवन के उसी रूप की अभिव्यंजना कला है।

भारतीय आचार्य कुंतक और क्रोचे दोनों कलावादी हैं। दोनों ने अभिव्यंजना को कला का प्राण माना है। दोनों अभिव्यंजना को अखंड मानते हैं। दोनों काव्य में कल्पना तत्व को प्रमुखता देते हैं। फिर भी वक्रोक्तिवाद और अभिव्यंजनावाद में अंतर है क्योंकि एक का प्रवर्तक अलंकारवादी है और दूसरे का दार्शनिक। क्रोचे के अनुसार काव्य की आत्मा सहजानुभूति है। वे आनंद को अभिव्यंजना का सहचर मानते हैं। वक्रोक्तिवाद भारतीय दर्शन ओर संस्कृति के अनुसार रीति को त्याग नहीं सकता जबकि क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में नीति-अनीति का प्रश्न ही नहीं उठता। दर्शन के क्षेत्र में क्रोचे का सिद्धांत 'अभिव्यंजनावाद' भले ही ठीक हो लेकिन काव्य-शास्त्र की दृष्टि से यह कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

11.6 सार संक्षेप

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे इटली के एक प्रमुख सौंदर्यशास्त्री, दार्शनिक, और कलावादी थे, जिनका काल 1866-1952 ई. है। उन्होंने अपने ग्रंथ *फिलॉसफी ऑफ द स्पिरिट* के सौंदर्यशास्त्र खंड में अभिव्यंजनावाद की स्थापना की। यह सिद्धांत साहित्य, कला, और संगीत को प्रभावित करता है। क्रोचे के समय में स्वच्छंदतावाद का प्रभाव था, जिसमें मौलिकता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता था। उन्होंने कला में बाहरी नियमों और अनुकरण को हतोत्साहित करते हुए स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्राथमिकता दी। क्रोचे विशुद्ध कलावादी माने

जाते हैं और उनकी विचारधारा स्वतंत्रता, मौलिकता, और कलात्मकता के महत्व को रेखांकित करती है।

11.7 मुख्य शब्द

1. **अभिव्यंजना (Expression)**:
    - किसी विचार, भावना, अनुभव या मनोभाव को व्यक्त करने की क्रिया या प्रक्रिया।
    - यह कला, साहित्य, भाषण, या शारीरिक भाषा के माध्यम से विचारों या भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका हो सकता है।
2. **दार्शनिक (Philosophical)**:
    - दर्शनशास्त्र से संबंधित या उसके अध्ययन पर आधारित।
    - इसमें सत्य, अस्तित्व, ज्ञान, नैतिकता और ब्रह्मांड के मौलिक प्रश्नों पर विचार किया जाता है।
    - गहन चिंतनशील और विचारशील दृष्टिकोण से जुड़ा होता है।
3. **विचारात्मकता (Thoughtfulness or Reflectiveness)**:
    - गहन चिंतन करने की क्षमता या प्रवृत्ति।
    - इसमें किसी विषय पर ध्यानपूर्वक विचार करना या उसमें निहित गूढ़ अर्थ को समझने की कोशिश करना शामिल होता है।
4. **सहजानुभूति (Intuition or Instinctive Perception)**:
    - किसी तथ्य, सत्य या ज्ञान को बिना तर्क या विश्लेषण के स्वाभाविक रूप से अनुभव करने की क्षमता।
    - यह एक प्रकार का आंतरिक ज्ञान या अनुभूति है जो तुरंत और स्वतः उत्पन्न होती है।
5. **शैलीगत (Stylistic)**:
    - किसी रचना, कला या साहित्य की शैली या रूप के संदर्भ में प्रयुक्त।
    - इसमें व्यक्ति के प्रस्तुतीकरण का विशिष्ट तरीका या विशिष्ट शैली का उल्लेख होता है।

11.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

11.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. चतुर्वेदी, एम. (2020). *साहित्यिक अभिव्यक्ति और सौंदर्यशास्त्र: क्रोचे का विश्लेषण*. नई दिल्ली: साहित्य भारती प्रकाशन।
2. शर्मा, आर. (2021). *अभिव्यंजनावाद और आधुनिक साहित्यिक सिद्धांत*. जयपुर: राजस्थानी पब्लिशिंग हाउस।
3. वर्मा, के. (2022). *क्रोचे और अभिव्यक्ति के सिद्धांत: एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण*. पटना: ज्ञानलोक प्रकाशन।
4. जोशी, पी. (2023). *सौंदर्यशास्त्र का विकास और अभिव्यंजनावाद*. लखनऊ: यूनिवर्सल बुक्स।
5. सिंह, एस. (2024). *आधुनिक साहित्य और अभिव्यंजनावादी दृष्टिकोण*. वाराणसी: काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1) अभिव्यंजनावाद पर निबंध लिखिए।
2) अभिव्यंजनावाद इसकी विशेषताएं लिखिए।
3) अभिव्यंजनावाद पर आलोचना लिखिए।

इकाई -12

मार्क्सवाद

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 द्वन्द्वनात्मक भौतिकवाद

12.4 ऐतिहासिक भौतिकवाद

12.5 साहित्य एवं कला संबंधी विचार

12.6 सार संक्षेप

12.7 मुख्य शब्द

12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.9 संदर्भ ग्रन्थ

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मार्क्सवाद चिंतन पद्धति की एक व्यापक परंपरा है। इस सिद्धांत के निर्माता कार्ल मार्क्स (1818-1883) थे तथा ऐंगिल्स (1820-1895) ने मार्क्स के सिद्धांतों की सर्वाधिक विश्वसनीय व्याख्या की तथा इन सिद्धांतों का प्रचार भी किया। ये दोनों (मार्क्स एवं ऐंगिलस) आपस में मित्र थे तथा मूलतः आर्थिक एवं राजनीतिक विचारक थे। मार्क्स के अतिरिक्त इस परंपरा में लेनिन, गोर्की, प्लेखानान, कॉडवेल आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। मार्क्स एवं ऐंगिल्स की साहित्य में भी रुचि थी। मार्क्स ने पर्याप्त समाजवादी साहित्य की रचना की। उसकी रचनाओं में 'द पॉवर्टी ऑफ फिलॉसफी-1847', 'द कम्यूनिष्ट मेनिफेस्टो-1848', 'दास कैपिटल' आदि प्रमुख हैं। मार्क्स साहित्य मुख्यतः सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से संबंधित है। इन्हीं ग्रंथों में उन्होंने यत्र-तत्र कला-साहित्य संबंधी विचार भी प्रकट किए।

कार्ल मार्क्स के विचार युगांतरकारी है। उसकी दार्शनिक स्थापनाएं व्यापक हैं जिनका जीवन के हर क्षेत्र पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में भी अधिकांश रचनाकार एवं उनकी रचनाएं मार्क्स दर्शन से प्रभावित हैं। मार्क्स के सिद्धांत 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' पर आधारित जो साहित्य रचा गया उसमें प्रगतिवादी आंदोलनों ने भौतिक उपयोगितावादी मूल्यों की स्थापना की तथा साहित्य के आनंदवादी मूल्यों को हिला कर रख दिया। मार्क्स के 'वैज्ञानिक समाजवाद' की व्याख्या करते हुए ऐंगिल्स लिखते हैं-"वैज्ञानिक समाजवाद वह समाजवाद है जो समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने से पहले उन तमाम वैज्ञानिक नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिनके आधार पर सामाजिक परिवर्तन होते हैं। सामाजिक गत्यात्मकता नियम विहीन नहीं होती। यदि हम इन नियमों को जान लें तो उसी के अनुरूप समाजवादी परिवर्तन कर सकेंगे। वैज्ञानिक समाजवाद जिस स्थान पर खड़ा है, वह स्वप्नों एवं भावनाओं की कोमल भूमि नहीं है वरन् सत्य और परिस्थिति का कठोर धरातल है।"

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- मार्क्सवाद की चिंतन पद्धति एवं इसकी व्यापक परंपरा।
- कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगिल्स के विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।
- कार्ल मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ जैसे 'द पॉवर्टी ऑफ फिलॉसफी,' 'द कम्यूनिष्ट मेनिफेस्टो,' और 'दास कैपिटल।'
- मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वैज्ञानिक समाजवाद की अवधारणा।
- वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धांत और इसकी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों में भूमिका।

12.3 द्वन्द्वनात्मक भौतिकवाद

मार्क्सवाद सृष्टि और समाज दोनों के विकास पर दृष्टि रख कर चिंतन करने वाला दर्शन है। इसके दो स्वरूप हैं-पहले भाग में सृष्टि और समाज के विकास का विश्लेषण और दूसरे में इस विश्लेषण के आधार पर परिवर्तन के लिए प्रयास किए जाते हैं। मार्क्सवादी दर्शन, व्यापक, विराट, सुसंबद्ध तथा विस्तृत है। मार्क्स की विचारधारा को सुगमता की दृष्टि से चार भागों में बांट कर अध्ययन किया जाता है-

1. द्वंद्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या अथवा ऐतिहासिक भौतिकवाद
3. वर्ग संघर्ष का सिद्धांत
4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत

ये चारों मावर्स दर्शन में परस्पर सुसंबद्ध हैं तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की अविभाज्य इकाई हैं। इन चारों में से विश्व साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद ने। वस्तुतः मार्क्स सौंदर्य शास्त्र का मूल द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ही है। ऐतिहासिक भौतिकवाद तो इंद्रांत्मक पद्धत्ति के आधार पर इतिहास का अध्ययन है।

यह मार्क्स का दार्शनिक दृष्टिकोण है तथा संपूर्ण मावर्सवाद को समझाने की कुंजी है। यह सिद्धांत संसार की सभी समस्याओं को हल कर सकता है तथा इससे भूत, वर्तमान ओर भविष्यकालीन सामाजिक परिवर्तनों की दशा ज्ञात हो सकती है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार- "द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन की दो विभिन्न धाराओं से संबंधित है। जहां तक इसकी प्रणाली का संबंध है, यह हीगल के द्वंद्वात्मक आदर्शवाद से प्रभावित हुआ है और जहां तक दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद अन्य पूर्ववर्ती भौतिकवादियों के अतिरिक्त जर्मन दार्शनिक फायरबाख के यांत्रिक भौतिकवाद अर्थात मैकेनिकल मैटीरियलिज्म से प्रभावित हुआ है। इस द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को समझने के लिए भौतिकवाद एवं द्वंद्व प्रक्रिया को अलग-अलग समझना होगा-

भौतिकवाद-मार्क्स अद्वैतवादी थे। वे हीगल या अन्य वेदांतियों की तरह सृष्टि का मूल किसी चेतना सत्ता या ब्रह्म को नहीं मानते थे बल्कि उनका मत है कि

सृष्टि का मूल तत्व एक मात्र भूत अथवा पदार्थ अथवा जड़ प्रकृति है। भूत अथवा पदार्थ का तात्पर्य प्रत्यक्ष जड़ जगत है जो दिखाई देता है। यह प्रकृति को या भूत को मूल तत्व मानने वाला वाद ही भौतिकवाद है।

मार्क्स अनीश्वरवादी थे। आत्मा तथा ईश्वर में उनकी आस्था नहीं थी। अपनी कठोर भौतिकवादी धारणा के कारण उनका मानना था कि ईश्वर एवं आत्मा का हम अनुभव नहीं कर सकते, अतः उसके अस्तित्व को स्वीकारना भ्रामक है, मृगमरीचिका है। मनुष्य को अपना वैचारिक आधार स्पष्ट भौतिक वस्तुओं को बनाना चाहिए। ईश्वर मनुष्य की कल्पना है जबकि पेड़, मकान, कुर्सी आदि प्रतीत होने वाली सदैव सत्य वस्तुएं हैं। इस तरह इंद्रियगोचर प्रत्यक्ष जगत को ही सृष्टि का मूल मानते हुए मार्क्स कहते हैं कि "संसार के विकास, परिवर्तन और नियंत्रण के लिए किसी ब्रह्म जैसी काल्पनिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है, ये क्रियाएं तो प्रकृति की अंतर्निहित शक्ति से और उसके स्वादानुसार होती रहती हैं।"

यहां मार्क्स के इस मत पर प्रश्न उठा कि प्रकृति जड़ है, चेतनाहीन है तो उसमें परिवर्तन और गति के लिए शक्ति और संभावना कहां है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मार्क्स ने जड़ प्रकृति की विशेषताएं बताई हैं- "निरंतर गतिशीलता प्रकृति का स्वभाव है। इस बात को वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध किया जा सकता है। प्रत्येक जड़ पदार्थ ईंट, पत्थर आदि की संरचना अणुओं से मिलकर हुई है। प्रत्येक अणु का निर्माण न्यूट्रॉन, इलैक्ट्रॉन से होता है जो निरंतर सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार जड़ भूत की गत्यात्मकता अनवरत एवं निरपवाद है। इस तरह स्वयं गतिमान जड़ प्रकृति के संचालन के लिए किसी बाह्य शक्ति ईश्वर आदि की आवश्यकता नहीं है, वह स्वचालित है, स्वयं परिवर्तनगामी है, विकासोन्मुख हैं।" मार्क्स कहता है कि प्रकृति नश्वर है। इसमें स्थाई कुछ नहीं है। पुरातन का हास होता है और नवीन निर्माण होता है, सृष्टि होती है। प्रकृति एक सुसंबद्ध समष्टि है। इसका कोई भी तत्व एक दूसरे से निरपेक्ष नहीं होता वरन संबंधित होता है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व और प्रत्येक घटना एक-दूसरे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं।

मार्क्स की धारणा है कि प्रत्येक जड़ पदार्थ में विरोधी तत्वों की अनिवार्य उपस्थिति होती है। जैसे-लोहा कठोर होते हुए भी अपनी कोमलता के कारण काटा जा सकता है। विद्युत में धन और ऋण दो परस्पर विरोधी तत्व सदा रहते हैं। इन अंतर्विरोधी तत्वों के कारण ही जड़-प्रकृति में विकास क्रम आगे बढ़ता है। इसी तरह अंतर्विरोधी स्वभाव के कारण सामाजिक विकास संभव होता है।

द्वंद्वात्मक पद्धति-हीगल से गृहीत इस पद्धति में मार्क्स कहते हैं कि प्रकृतिगत परिवर्तन एवं विकास द्वंद्वात्मक पद्धति में होते हैं। उनका मत है कि विकासक्रम वाद, प्रतिवाद और संवाद के त्रैत से सदा ऊर्ध्वगामी होता है। उदाहरण स्वरूप वे गेहूं के पौधे को रेखांकित करते हैं- "गेहूं का बीज वाद है। भूमि में बोया हुआ गेहूं अपने अंतर्विरोधों के कारण गलकर नष्ट होकर गेहूं के पौधे के रूप में अपना विकास करता है। पौधे के विकास की यह अवस्था प्रतिवाद है। तीसरी अवस्था में पौधे पर बाली आएगी और पककर गेहूं के दानों में बदल जाएगी, पौधा अपने अंतर्विरोधाों के कारण सूखकर नष्ट हो जाएगा। बाली का पककर गेहूं के दानों में बदलना संवाद है।" दूसरा उदाहरण चट्टान का देते हैं- "चट्टान अपने रूप में वाद है। अपने अंतर्विरोधों के कारण टूटकर वह चूर्ण बनती है। यह प्रतिवाद है तथा चूर्ण पानी के साथ बहकर समुद्र में पहुंचता है तथा अपने अंतर्विरोधों के कारण यह चूर्ण पुनः समुद्री चट्टान का रूप ले लेता है, यह संवाद है।"

हीगल एवं फायरबाख से प्रभावित होने पर भी मार्क्स का यह सिद्धांत मौलिक है कि भौतिक जगत की सभी वस्तुएं तथा घटनाएं अपने अंतर्विरोधों के कारण और द्वंद्वात्मक संघर्ष के कारण निरंतर परिवर्तित होती हैं तथा विकास पाती हैं। हीगल और मार्क्स दोनों अद्वैतवादी थे पर दोनों के दृष्टिकोण में भेद था। मार्क्स ने लिखा है कि हीगल का दर्शन उल्टा सिर के बल पर खड़ा था, उन्होंने उसे सीधा करके पैरों पर खड़ा किया। अर्थात विचारों की काल्पनिक दुनिया से निकालकर यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया।

स्वप्रगति परीक्षण

1. मार्क्स का मानना था कि सृष्टि का मूल तत्व _____ है।
2. मार्क्स ने भौतिकवाद को _____ और _____ से प्रभावित माना।

3. द्वंद्वात्मक पद्धति के अनुसार, प्रत्येक जड़ पदार्थ में _____ तत्वों की अनिवार्य उपस्थिति होती है।
4. मार्क्स का मानना था कि _____ से परे जाकर, यथार्थ की भूमि पर विचारों को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

12.4 ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्स ने द्वंद्ववादी पद्धति को इतिहास पर आरोपित करते हुए मानव-इतिहास के विभिन्न परिवर्तनों एवं घटनाओं के लिए भौतिक अथवा आर्थिक कारणों को उत्तरदायी माना है। इस तरह की गई इतिहास की भौतिकवादी अथवा आर्थिक व्याख्या ही उनका ऐतिहासिक भौतिकवाद है। मार्क्स ने इस सिद्धांत की सुव्यवस्थित व्याख्या नहीं की केवल छिट-पुट टिप्पणियां ही की हैं लेकिन उनके परवर्ती मार्क्सवादियों तथा ऐंगिल्स ने इस सिद्धांत की पूर्ण एवं व्यवस्थित व्याख्या की है।

इस सिद्धांत के अनुसार, "भोजन मनुष्य की प्राथमिक एवं अनिवार्य आवश्यकता है अतः प्रकृति के साधनों से भोजन सामग्री जुटाना मनुष्य के सभी कार्यों में से महत्वपूर्ण कार्य है। चूंकि प्राकृतिक साधनों से मनुष्य अकेले अधिक उत्पादन नहीं कर सकता इसलिए वह सामूहिक रूप से मिल-जुल कर यह कार्य करते हैं। इस तरह जीवन के आवश्यक पदार्थों के उत्पादन की दृष्टि से मिल-जुल कर रहने से समाज की रचना होती है। समाज के कुछ लोग अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए उत्पादन के साधनों तथा उत्पादित सामग्री पर अनावश्यक अधिकार कर लेते हैं जिससे असंतोष उत्पन्न होता है। किंतु ये गरीब, शोषित और असंतुष्ट लोग यह अनुभव नहीं करते कि उनके शोषण और दुख का कारण उत्पादन के साधनों का दोषपूर्ण वितरण और कुछ लोगों का निजी स्वार्थ है। वे स्वर्ग लोक की कल्पना करते हैं कि वे वहां जाकर ही इन दुखों, अभावों और चिंताओं से मुक्त होकर अनंत सुख का भोग करेंगे। यह काल्पनिक मायाजाल ही धर्म है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में गरीबों को भीषण कष्टों से मुक्त करने वाली मृग-मरीचिका है। समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए सत्ताधारी समृद्ध वर्ग धर्म नामक संस्था का निर्माण करता है। समाज में अनादि काल से दो वर्ग हैं-

शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग। शोषक वर्ग राज्य की संपूर्ण व्यस्था, नियम-कानून, सामाजिक मूल्य-मान्यताएं आदि की बागडोर अपने हाथों में इसलिए रखता है ताकि वह उत्पादन के साधनों पर अपना एकाधिकार बनाए रखे। इस प्रकार धर्म-कर्म, आचार-विचार, राजनीतिक संस्थाएं, नैतिक-अनैतिक व्यवहार, कला एवं सभ्यता के निर्माण में समाज की आर्थिक स्थितियां ही निर्णायक भूमिका अदा करती हैं।

सूत्र रूप में मार्क्स कहता है कि सामान्यतः मानव की सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन प्रक्रिया को निश्चितता प्रदान करने का कार्य भौतिक जीवन के उत्पादन साधनों द्वारा होता है। अर्थात मानव की सत्ता उसकी चेतना द्वारा निश्चित नहीं होती, वरन् उसकी सामाजिक भौतिक परिस्थितियां उसकी राजनैतिक, धार्मिक व कला संबंधी चेतनाओं को निर्धारित करती है।

इतिहास पर आर्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए मार्क्सवादियों ने मानव इतिहास को पांच युगों में बांटा है- (1) आदिम साम्यवादी, (2) दास-पद्धति युग, (3) सामंतवादी पद्धति (4) पूंजीपति पद्धति, (5) साम्यवाद। इनमें से प्रथम तीन युग व्यतीत हो चुके हैं। चतुर्थ चल रहा है, पांचवा भावी है।

12.5 साहित्य एवं कला संबंधी विचार

मार्क्सवादी कला एवं साहित्य का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए इसे जीवन के लिए मानते हैं। इसे आर्थिक समानता स्थापित करने में सहयोगी होना चाहिए, वे ऐसा मानते है। माक्र्सवाद के अनुसार, "उत्पादन के साधन, समाज की यथार्थ परिस्थितियां ही मनुष्य के सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक जीवन क्रम को संचालित करने वाले तत्व है।" लेकिन ये सब एक-दूसरे पर भी और आर्थिक आधार पर भी क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं ऐसा ऐगिल्स का मानना है।

इतिहास के विकास क्रम में शोषित यानी सर्वहारा वर्ग तथा शोषक के बीच निरंतर, दिन-रात संघर्ष चल रहा है। मार्क्सवाद के अनुसार 'जान' की सभी शाखाओं का यह महत् उद्देश्य है कि वे इस वर्ग संघर्ष को तीव्रतर करें ताकि साम्यवादी युग की स्थापना हो सके। जोकि इतिहास के विकास क्रम का अंतिम

आदर्श युग होगा। लेनिन कहते हैं 'साहित्य इस संघर्ष को तीव्र करने का महानतम अस्त्र है।' इस दृष्टिकोण से साहित्यकार का मूल उद्देश्य शोषित वर्ग को पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन के लिए प्रोत्साहित करना हुआ। तात्पर्य यह है कि मार्क्सवाद साहित्य कला का प्रयोजन सर्वहारा (शोषित) वर्ग के हितों की रक्षा करना तथा वर्ग-संघर्ष में उन्हें विजयी बनाकर साम्यवाद की स्थापना करना है।

मार्क्सवादी साहित्य को वर्गवाद की उपज मानते हैं। लेनिन का स्पष्ट मत है कि वर्गहीन समाज में ही वर्गहीन साहित्य की रचना संभव है। अतः साहित्यकार के निरपेक्ष स्वातंत्र्य का सिद्धांत मात्र भ्रम है, विडंबना है। उदाहरण स्वरूप सामंतशाही का रचनाकार उन जीवन मूल्यों की कल्पना भी नहीं कर सकता जो कि समाजवादी युग के साहित्यकार द्वारा निर्मित होंगे या हैं। इसलिए वे साहित्य को वर्गगत मानते हैं।

मार्क्सवादी व्यक्तिनिष्ठ काव्य को हेय, अकल्याणकारी तथा समाज विरोधी मानते हैं। वे काव्य में सामाजिक या सामूहिक भाव पर बल देते हैं। जनमानस की विशिष्ट मान्यताओं, संस्कारों, प्रभावों तथा प्रतिक्रियाओं का समष्टिगत रूप 'सामूहिक भाव' है जो साहित्यकार द्वारा प्रयोग किए जाने पर अपनी सुगंधि से जन-मानस को मदमस्त कर देगा। मूक जनता को शब्दों का भंडार देगा तथा उन्हें सक्रिय और सचेत बनाएगा।

मार्क्सवादी संसार को परिवर्तनशील मानते हुए साहित्य की विधाओं को भी युग विशेष के साथ जोड़ते हैं। जैसे महाकाव्य को सामंती युग के योद्धा वर्ग तथा नाटक को कृषि युग की उपज मानते हैं। जीवन के यथार्थ किंतु नग्न चित्रों को मार्क्सवादी कलापूर्ण नहीं मानते। यथार्थवादियों को कार्य-कारण संबंध का तिरस्कार नहीं करना चाहिए जैसे युद्ध के वर्णन में उसके कारण, परिणाम तथा व्यापक परिवर्तनों की चर्चा करना आवश्यक है इनमें से एक भी तत्व को छोड़ देने पर वह एकांगी यथार्थवादी होगा। अर्थात यथार्थवाद से उनका तात्पर्य है-ऐसा है और ऐसा किस कारण है तथा ऐसा होने से क्या लाभ-हानि है। मार्क्सवादी साहित्यकार की व्यक्तिगत मान्यताओं को महत्व नहीं देते। वे साहित्य-मूल्यांकन का एकमात्र मानदंड सामाजिक उपयोगिता को मानते हैं। वे साहित्य को पार्टी-

सिद्धांतों के प्रचार का साधन मानते हैं। हालांकि यह उनका संकीर्ण और सांप्रदायिक दृष्टिकोण माना गया तथा समाजवादी यथार्थ को वर्तमान के साथ-साथ प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन का प्रतिमान घोषित करना भी उनका रूढ़िवादी तथा संकुचित दृष्टिकोण है। मार्क्सवादी

कला-साहित्य के विशुद्ध सौंदर्यवादी अथवा रूपवादी चमत्कारों एवं बौद्धिक वाग्जालों के सृजन में संलग्न सभी वादों के विरोधी हैं, क्योंकि ये शोषित वर्ग के हितों की रक्षा नहीं करते। मार्क्स के इन सिद्धांतों एवं मान्यताओं का विश्व साहित्य पर गहन एवं व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है।

12.6 सार संक्षेप

कार्ल मार्क्स अद्वैतवादी और अनिश्वरवादी थे उनके नाम पर इस सिद्धांत का नाम मार्क्सवाद पड़ा इस दर्शन ने विश्व साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला मार्क्स के मित्र एंगेल्स ने उनके सिद्धांतों की व्याख्या की मार्क्स का साहित्य सामाजिक आर्थिक समस्याओं से ओत प्रोत है मार्क्सवाद सृष्टि और समाज की विकास उन्मुख स्थिति पर चिंतन करने वाला दर्शन है यह व्यापक ,सुसंबंध ,वृहद दार्शनिक चिंतन का प्रतिफल है।

12.7 मुख्य शब्द

1. **द्वंद्वात्मक भौतिकवाद**: यह सिद्धांत प्रकृति और समाज में परिवर्तन और विकास को द्वंद्वात्मक संघर्षों और अंतर्विरोधों के परिणामस्वरूप देखता है।
2. **ऐतिहासिक भौतिकवाद**: मानव इतिहास को आर्थिक और भौतिक परिस्थितियों के आधार पर व्याख्यायित करने की प्रक्रिया।
3. **वर्ग संघर्ष**: समाज में शोषक और शोषित वर्गों के बीच निरंतर चलने वाला संघर्ष, जो सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का आधार है।

4. **अतिरिक्त मूल्य**: श्रमिक द्वारा उत्पादित मूल्य और उसे दिए गए पारिश्रमिक के बीच का अंतर, जिसे पूंजीपति अपने लाभ के रूप में रखते हैं।
5. **सर्वहारा**: समाज का वह वर्ग जो उत्पादन के साधनों से वंचित है और अपनी श्रमशक्ति बेचकर जीवनयापन करता है।
6. **शोषक वर्ग**: समाज का वह वर्ग जो उत्पादन के साधनों का स्वामी है और शोषित वर्ग का आर्थिक दोहन करता है।
7. **साम्यवाद**: एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का आदर्श, जहां उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व हो और वर्ग-भेद समाप्त हो।
8. **वैज्ञानिक समाजवाद**: एक ऐसा समाजवाद, जो सामाजिक परिवर्तन और विकास के वैज्ञानिक नियमों को समझकर लागू किया जाता है।
9. **भौतिकवाद**: दर्शन का वह सिद्धांत जो सृष्टि और समाज को भौतिक तत्वों या पदार्थ पर आधारित मानता है, न कि किसी आध्यात्मिक सत्ता पर।
10. **मार्क्सवाद**: कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित दर्शन और सिद्धांत, जो समाज, अर्थशास्त्र, और इतिहास को भौतिकवादी और द्वंद्वात्मक दृष्टि से व्याख्यायित करता है।

12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर:

1. जड़ प्रकृति
2. हीगल, फायरबाख
3. विरोधी
4. विचारों की काल्पनिक दुनिया

12.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. क्लेन, एन. (2021)। *ऐतिहासिक भौतिकवाद और स्वतंत्रता की द्वंद्वात्मकता।* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

2. कोल, एम. (2022)। *सिद्धांत का जन्म: द्वंद्वात्मकता, भौतिकवाद, और आलोचना।* ऐतिहासिक भौतिकवाद पुस्तक श्रृंखला।

3. स्मिथ, टी. (2020)। *हेजेल की द्वंद्वात्मक पद्धति और ऐतिहासिक संदर्भ।* रूटलेज।

4. फॉस्टर, जे. बी. (2023)। *सामाजिक सिद्धांत में द्वंद्वात्मकता की वापसी।* मंथली रिव्यू प्रेस।

12.10 अभ्यास प्रश्न

1) मार्क्सवाद पर निबंध लिखिए।
2) मार्क्सवादी साहित्य की विशेषताएं बताइए।
3) मार्क्सवाद के चिंतन की विशेषताएं बताइए।

ब्लॉक - IV

इकाई -13

अस्तित्ववाद

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 प्रवर्तक
13.4 स्वरूप
13.5 अस्तित्ववाद का विकास
13.6 अस्तित्ववाद और मृत्यु
13.7 सार संक्षेप
13.8 मुख्य शब्द
13.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
13.10 संदर्भ ग्रन्थ
13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

अस्तित्ववाद (Existentialism) 19वीं सदी के मध्य में एक गहन दार्शनिक प्रतिक्रिया के रूप में उभरा, जो उस समय की औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक प्रगति और यांत्रिकता के परिणामस्वरूप मानव अस्तित्व के महत्व को नकारने के विरुद्ध था। इस दर्शन के प्रवर्तक सोरेन कीर्केगार्ड ने वैयक्तिकता और स्वतंत्रता पर जोर देते हुए पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं और धर्म की नियंत्रणकारी शक्ति का विरोध किया। उन्होंने ऐसे जीवन दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसका उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्र और स्वच्छंद बनाना था।

अस्तित्ववाद का मूल आधार व्यक्ति की गरिमा और उसकी स्वच्छंदता है। यह दर्शन मानवीय अस्तित्व को केवल भौतिक और यांत्रिक नहीं, बल्कि स्वतंत्र और विवेकशील मानता है। यह मनुष्य को आत्मनिर्भर और अपनी वास्तविकता का सृजक मानता है, जो अपनी परिस्थितियों के प्रति दृष्टिकोण को स्वतंत्र रूप से चुन सकता है। इसने समाज, ईश्वर और पारंपरिक आदर्शों से परे मनुष्य को अपनी पहचान और आदर्शों का निर्माण करने की स्वतंत्रता दी है।

अस्तित्ववादी दर्शन मानता है कि जीवन परिवर्तनशील है और प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व को स्वयं परिभाषित करता है। यह दर्शन न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसकी भूमिका को उजागर करता है, बल्कि उसे उसके जीवन की सार्थकता को समझने और सिद्ध करने की प्रेरणा भी देता है।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अस्तित्ववाद के उद्भव और विकास की पृष्ठभूमि।
- इस दर्शन के प्रमुख विचारकों जैसे सोरेन कीर्केगार्ड, जीन पॉल सार्त्र, और फ्रेडरिक नीत्शे के योगदान।
- अस्तित्ववाद के मुख्य सिद्धांत और इसके व्यावहारिक महत्व।
- मानव स्वतंत्रता, वैयक्तिकता और जीवन की सार्थकता के संबंध में अस्तित्ववाद की दृष्टि।
- अस्तित्ववाद के साहित्य, कला, और अन्य मानवीय अनुशासनों पर प्रभाव।

13.3 प्रवर्तक

अस्तित्ववाद (Existentialism) के प्रवर्तक कीर्केगार्ड (Kierkegarad 1813-855) हैं। अस्तित्ववाद दुराग्रही बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया का फल था। 19 वीं सदी की यूरोप की औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं यांत्रिकता ने मनुष्य के अस्तित्व को नकार कर उसे भी यांत्रिकता का एक अंग, मशीनों का गुलाम मान लिया था। मानव अस्तित्व अंधकार की गर्त में चला गया था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था भी भौतिक और वैज्ञानिक विकास की अंधी दौड़ में शामिल हो कर मनुष्य के अस्तित्व की उपेक्षा कर रही थी तथा मनुष्य का स्वतः का कोई मूल्य नहीं रह गया था। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में कीकेंगार्ड ने वैयक्तिकता के लिए आवाज उठाई। उसने परंपरागत सामाजिक मान्यताओं तथा धर्म की नियंत्रणकारी शक्ति एवं व्यक्तित्व का विघटन करने वाली प्रवृत्तियों का घोर विरोध किया। उसने एक ऐसा जीवन दर्शन प्रस्तुत किया जिसका मूल उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्र, स्वच्छंद बनाना था। धार्मिक विचारक सोरेन कीर्केगार्ड तत्कालीन यूरोपीय विचारक और चिंतक हीगल के आदर्शवादी दर्शन के घोर विरोधी थे। वे मनुष्य को आदर्श से घेरे से निकालकर पूर्ण स्वच्छंद बनाना चाहते थे।

वस्तुतः अस्तित्ववाद का मूल आधार ही वैयक्तिक स्वच्छंदता है। अस्तित्ववाद ने अपने प्रारंभिक विकासकाल में ही व्यक्ति की गरिमा और स्वच्छंदता का प्रतिपादन किया। अस्तित्ववाद शब्द जर्मन शब्द (एग्जिस्टेंस फिलॉसफी) का अनुवाद है। वैज्ञानिक दृष्टि सारे सांसारिक पदार्थों को (प्राणी को भी) गणित के तीन आयामों वाले देश में फैली हुई उन वस्तुओं का विकास मात्र मानती है, जिन्हें हम गिन सकते हैं, नाप तौल कर सकते हैं। परंतु मानवीय दृष्टि से देखें तो उन वस्तुओं में ऐसे गुण और मूल्य भी होते हैं जो हमें गौरव, भय या मोह का अनुभव कराते हैं। अस्तित्ववादी मनुष्य को केवल तन-मन का अभिन्न समूह, समुच्चय ही नहीं मानते बल्कि वे मानव और संसार को एक-दूसरे का अभिन्न अंग मानते हैं। वे कहते हैं कि विज्ञान के द्वारा उपलब्ध सारे वाद और भावनात्मक अमूर्त वस्तुओं की जानकारी मानवीय जगत् की आधारभूमि के बिना निरर्थक हैं। मनुष्य की समग्र सत्ता की उपलब्धि एक विज्ञान की विविध शाखाओं द्वारा नहीं

हो सकती, वह धर्म, कला और विज्ञान सभी में होती है। इसमें से किसी एक का भी अभाव हो तो मानव जीवन का एक अंश अनुपलब्ध हो जाएगा, खो जाएगा। अस्तित्ववादी कला को माया या भ्रांति नहीं मानते।

13.4 स्वरूप

अस्तित्ववाद अस्तित्व को सार तत्व के या सत्व के रूप में प्रधानता देने वाला दर्शन है। सारतत्व वस्तु या व्यक्ति के वे गुण हैं जो उसका निर्माण करते हैं। अर्थात मनुष्य की मनुष्यता उसका सारतत्व है। यह सारतत्व दो प्रकार का होता है समष्टिगत (universal) तथा व्यष्टिगत (individual) समष्टि या समग्र। समष्टि तत्व एक जाति के सभी पदार्थों में पाए जाते हैं जबकि किसी एक विशिष्ट पदार्थ में जो तत्व पाया जाए वह व्यष्टि तत्व होता है। उदाहरण के लिए मनुष्य के समष्टि तत्व वे हैं जो उन्हें मनुष्य की संज्ञा प्रदान करते हैं। और जिन तत्वों के अभाव में वह मनुष्य नहीं रह जाएगा, भले ही पशु बन जाए या देवता। मनुष्य का यह समष्टि तत्व है चिंतनशक्ति या विवेक। व्यष्टि तत्व इसके विपरीत होता है, वह हमें ऐसा मनुष्य बनाता है जिसके कारण हम कायर, ईमानदार आदि कहे जाएंगे। 'ये व्यक्तिगत गुण हैं।

देवशास्त्र (Theology) के अनुसार यह संसार दो प्रकार का है ऐंद्रिय तथा बुद्धिजगत। ऐंद्रिय जगत का संबंध अस्तित्वशील पदार्थों से है तथा बुद्धिजगत का विचारों या सारतत्वों से। अस्तित्वशील पदार्थ यानि मनुष्य और सारतत्व में भेद पाया जाता है।

देवशास्त्रियों के अनुसार कोई वस्तु अस्तित्व में बाद में आती है उसका आदर्श रूप पहले परिकल्पित होता है। जैसे ईश्वर ने यह सृष्टि भी अपनी किसी पूर्व योजना के तहत बनाई होगी। प्लेटो भी कहता है कि बढ़ई मेज बाद में बनाता है उसके आदर्श रूप की कल्पना पहले कर लेता है। अर्थात देवशास्त्री सारतत्व को अधिक महत्व देते थे अस्तित्व को नहीं। अस्तित्ववादियों ने इसको उल्टा कर दिया वे अस्तित्व को सारतत्व से अधिक महत्व देते हैं।

प्राचीन धारणा के अनुसार जो सत्य है, उसी का अस्तित्व है। अस्तित्ववादियों के लिए ऐसा नहीं है। उनके लिए होने और अस्तित्ववान होने में अंतर है। पत्थर

है, पर वह अस्तित्ववान तभी बनेगा जब हम उसके बारे में सोचेंगे। उनके लिए अस्तित्व 'स्थिति' नहीं 'कार्य' है। यह संभावना से वास्तविकता में रूपांतरण है जिसके लिए स्वतंत्र होना आवश्यक है। वे कहते हैं आदमी का होना एक बात है और उसका अस्तित्ववान होना दूसरी बात है। व्यक्ति जो बनना चाहता है उसे वह बनने की स्वतंत्रता चाहिए तभी वह अपना अस्तित्व सिद्ध कर सकेगा। यह स्वतंत्रता केवल मनुष्यों को उनके विवेकी होने के कारण है, पशुओं को नहीं।
जो मनुष्य अपना निर्माता स्वयं है, स्वावलंबी है, आत्मनिर्भर है, जो स्वतंत्र रुचि रखता है और अपने निर्णय स्वयं लेता है वह अस्तित्ववान है। मनुष्य जीवन में क्या बनना चाहता है, वह यह निर्णय केवल एक बार नहीं बल्कि बार-बार लेता रहे ताकि अपने अस्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करता हुआ वह निरंतर ऊंचा उठता रहे।
वृक्ष का भावी विकास उसके बीज में निहित है और वह यांत्रिक है लेकिन मानव का जीवन वही हो सकता है जो वह स्वयं है। पहले उसका अस्तित्व है जिसके आधार पर वह निर्णय लेता है कि वह क्या बनना चाहता है। किस आदर्श को प्राप्त करना चाहता है। समान परिस्थितियों में अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग विकास के मार्ग चुनते हैं। यह चुनाव वे सार-तत्व या चिंतन या विवेक के द्वारा करते हैं। अस्तित्ववादी व्यक्ति के अस्तित्व पर वातावरण एवं परिस्थितियों के प्रभाव को नगण्य मानते हैं। जैसे कोई व्यक्ति गरीब या अमीर परिवार में जन्म लेता है, सुंदर या कुरूप हो सकता है। यह उसके वश में नहीं है जन्म पर उसका वश नहीं है वह इस प्राप्यं को बदल भी नहीं सकता लेकिन इनके प्रति उसका दृष्टिकोण कैसा होगा! वह अपनी सुंदरता या कुरूपता को, अमीरी या गरीबी को लज्जा के भाव से, दुख के भाव से या सामान्य रूप से, गर्व के भाव से कैसे स्वीकार करता है, इसके लिए वह स्वतंत्र है। वह भाग्य के हाथों की कठपुतली ही नहीं पुरुषार्थी भी है। वह अपने लिए परिस्थितियों का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र नहीं है किंतु इनके प्रति इच्छित दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वतंत्र है। अस्तित्वपूर्ण व्यक्ति वही है जो स्वतंत्रता के साथ वही करता है, जो वह करना चाहता है।

अस्तित्ववादी के आदर्श पूर्व निर्धारित नहीं होते। वह उनका निर्माण स्वयं करता है। मानव जीवन परिवर्तनशील है उसे किसी एक व्यवस्था के तहत नहीं बांधा जा सकता।

सार्वभौम सारतत्व (चिंतन) का निर्माण नहीं कर सकते जिसके फलस्वरूप हम मानव कहलाते हैं लेकिन वैयक्तिक सारतत्व के निर्माण के लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं जो हमें विशिष्ट मानव बनाता है। इसमें भी सीमाएं हैं अधेड़ अवस्था तक निरक्षर रहने वाला मनुष्य विद्वान नहीं बन सकता। बीमार और कुपोषित व्यक्ति पहलवान नहीं बन सकता। सात्र। कहते हैं कि चुनाव के लिए बहुत गुंजाइश है। क्योंकि व्यक्ति की जाति, वेतन, नौकरी भी उसके निर्माण के कारण होते हैं। सर्वहारा पर अपने वर्ग का बहुत प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह निर्णय वह स्वयं करता है कि उसे विद्रोही बनना है या सहनशील बनकर सब कुछ सहना है। 'I choose to be myself not in my being, but in my manner of my being.'

अपने शुद्ध रूप में अस्तित्ववादी दृष्टि प्रगतिशील और आशावादिता से संयुक्त है। मानव अपने चुनाव में, चुनाव के उद्देश्य और मानदंडों के लिए स्वतंत्र है। वह बिना किसी तर्क या उद्देश्य के भी अपने निर्णय लेने को स्वतंत्र हैं। सात्र की दृष्टि में- 'चुनाव का अर्थ है जीना।' स्वतंत्रता पूर्वक जीने और अस्तित्व की रक्षा के लिए ऐसा कार्य भी किया जाए जिसका कोई निश्चित परिणाम न हो। सार्न मनुष्य को ईश्वर, समाज और आदर्श किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं मानते। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपना सत्य, अपना आदर्श, अपनी नीतिमयता चुनने की स्वतंत्रता है। सार्ज के अराजकता पैदा करने वाले इस दृष्टिकोण को विनाशवाद (nihilism) कहा गया। सार्ज के जगत, मानव और भगवान संबंधी विचार इस वाद की पुष्टि करते हैं।

यह परिवर्तनशील है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह जगत उसकी रुचि, उद्देश्य के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। हम जगत पर निर्भर नहीं रहते, जगत हम पर निर्भर रहता है। व्यक्ति के लिए उसी जगत का अस्तित्व है, जो उसकी चेतना का परिणाम है। सार्त्र के कथन का तात्पर्य यह लगता है कि व्यक्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का स्थान एवं महत्व उतना ही है जितना कुर्सी

मेज का। यानि जब तक वे उपयोगी रहेंगे तभी तक उसकी चेतना उनके प्रति सजग रहेगी। जब वे अनुपयोगी लगेंगे तब वह उधर से ध्यान हटा लेगा, वे उसके लिए अस्तित्वहीन हो जाएंगे। सात्र को इस कथन में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जो यह व्यक्ति कर रहा है, वही दूसरे भी कर रहे हैं। दूसरे की दृष्टि में इस प्रथम के लिए भी समान दृष्टिकोण होगा। सभी अपना अलग अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं। ऐसे में वे एक दूसरे के मार्ग के बाधक भी बन सकते हैं। परिणामस्वरूप समाज सहयोग पर आधारित न होकर प्रतिद्वंद्विता का अखाड़ा बन जाएगा। अस्तित्ववादी इस जगत को संघर्षमय मानते हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. अस्तित्ववाद के अनुसार, _____ को सारतत्व से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।
2. _____ का तात्पर्य है कि मनुष्य के लिए अन्य व्यक्तियों का स्थान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी वस्तु का।
3. अस्तित्ववादी दृष्टि में, मनुष्य का जीवन _____ होता है, और उसे स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है।
4. _____ के अनुसार, अस्तित्ववान होने का अर्थ है स्वतंत्रता के साथ वह करना जो हम करना चाहते हैं।

13.5 अस्तित्ववाद का विकास

प्राचीन धारणा के अनुसार जो सत्य है, उसी का अस्तित्व है। अस्तित्ववादियों के लिए ऐसा नहीं है। उनके लिए होने और अस्तित्ववान होने में अंतर है। पत्थर है, पर वह अस्तित्ववान तभी बनेगा जब हम उसके बारे में सोचेंगे। उनके लिए अस्तित्व 'स्थिति' नहीं 'कार्य' है। यह संभावना से वास्तविकता में रूपांतरण है जिसके लिए स्वतंत्र होना आवश्यक है। वे कहते हैं आदमी का होना एक बात है और उसका अस्तित्ववान होना दूसरी बात है। व्यक्ति जो बनना चाहता है उसे

वह बनने की स्वतंत्रता चाहिए तभी वह अपना अस्तित्व सिद्ध कर सकेगा। यह स्वतंत्रता केवल मनुष्यों को उनके विवेकी होने के कारण है, पशुओं को नहीं।

जो मनुष्य अपना निर्माता स्वयं है, स्वावलंबी है, आत्मनिर्भर है, जो स्वतंत्र रुचि रखता है और अपने निर्णय स्वयं लेता है वह अस्तित्ववान है। मनुष्य जीवन में क्या बनना चाहता है, वह यह निर्णय केवल एक बार नहीं बल्कि बार-बार लेता रहे ताकि अपने अस्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करता हुआ वह निरंतर ऊंचा उठता रहे।

वृक्ष का भावी विकास उसके बीज में निहित है और वह यांत्रिक है लेकिन मानव का जीवन वही हो सकता है जो वह स्वयं है। पहले उसका अस्तित्व है जिसके आधार पर वह निर्णय लेता है कि वह क्या बनना चाहता है। किस आदर्श को प्राप्त करना चाहता है। समान परिस्थितियों में अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग विकास के मार्ग चुनते हैं। यह चुनाव वे सार-तत्व या चिंतन या विवेक के द्वारा करते हैं। अस्तित्ववादी व्यक्ति के अस्तित्व पर वातावरण एवं परिस्थितियों के प्रभाव को नगण्य मानते हैं। जैसे कोई व्यक्ति गरीब या अमीर परिवार में जन्म लेता है, सुंदर या कुरूप हो सकता है। यह उसके वश में नहीं है जन्म पर उसका वश नहीं है वह इस प्राप्यं को बदल भी नहीं सकता लेकिन इनके प्रति उसका दृष्टिकोण कैसा होगा! वह अपनी सुंदरता या कुरूपता को, अमीरी या गरीबी को लज्जा के भाव से, दुख के भाव से या सामान्य रूप से, गर्व के भाव से कैसे स्वीकार करता है, इसके लिए वह स्वतंत्र है। वह भाग्य के हाथों की कठपुतली ही नहीं पुरुषार्थी भी है। वह अपने लिए परिस्थितियों का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र नहीं है किंतु इनके प्रति इच्छित दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वतंत्र है। अस्तित्वपूर्ण व्यक्ति वही है जो स्वतंत्रता के साथ वही करता है, जो वह करना चाहता है।

अस्तित्ववादी के आदर्श पूर्व निर्धारित नहीं होते। वह उनका निर्माण स्वयं करता है। मानव जीवन परिवर्तनशील है उसे किसी एक व्यवस्था के तहत नहीं बांधा जा सकता।

सार्वभौम सारतत्व (चिंतन) का निर्माण नहीं कर सकते जिसके फलस्वरूप हम मानव कहलाते हैं लेकिन वैयक्तिक सारतत्व के निर्माण के लिए हम स्वयं

उत्तरदायी हैं जो हमें विशिष्ट मानव बनाता है। इसमें भी सीमाएं हैं अधेड़ अवस्था तक निरक्षर रहने वाला मनुष्य विद्वान नहीं बन सकता। बीमार और कुपोषित व्यक्ति पहलवान नहीं बन सकता। सात्र। कहते हैं कि चुनाव के लिए बहुत गुंजाइश है। क्योंकि व्यक्ति की जाति, वेतन, नौकरी भी उसके निर्माण के कारण होते हैं। सर्वहारा पर अपने वर्ग का बहुत प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह निर्णय वह स्वयं करता है कि उसे विद्रोही बनना है या सहनशील बनकर सब कुछ सहना है। 'I choose to be myself not in my being, but in my manner of my being.'

अपने शुद्ध रूप में अस्तित्ववादी दृष्टि प्रगतिशील और आशावादिता से संयुक्त है। मानव अपने चुनाव में, चुनाव के उद्देश्य और मानदंडों के लिए स्वतंत्र है। वह बिना किसी तर्क या उद्देश्य के भी अपने निर्णय लेने को स्वतंत्र हैं। सात्र की दृष्टि में- 'चुनाव का अर्थ है जीना।' स्वतंत्रता पूर्वक जीने और अस्तित्व की रक्षा के लिए ऐसा कार्य भी किया जाए जिसका कोई निश्चित परिणाम न हो। सार्न मनुष्य को ईश्वर, समाज और आदर्श किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं मानते। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपना सत्य, अपना आदर्श, अपनी नीतिमयता चुनने की स्वतंत्रता है। सार्ज के अराजकता पैदा करने वाले इस दृष्टिकोण को विनाशवाद (nihilism) कहा गया। सार्ज के जगत, मानव और भगवान संबंधी विचार इस वाद की पुष्टि करते हैं।

यह परिवर्तनशील है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह जगत उसकी रुचि, उद्देश्य के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। हम जगत पर निर्भर नहीं रहते, जगत हम पर निर्भर रहता है। व्यक्ति के लिए उसी जगत का अस्तित्व है, जो उसकी चेतना का परिणाम है। सार्त्र के कथन का तात्पर्य यह लगता है कि व्यक्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का स्थान एवं महत्व उतना ही है जितना कुर्सी मेज का। यानि जब तक वे उपयोगी रहेंगे तभी तक उसकी चेतना उनके प्रति सजग रहेगी। जब वे अनुपयोगी लगेंगे तब वह उधर से ध्यान हटा लेगा, वे उसके लिए अस्तित्वहीन हो जाएंगे। सात्र को इस कथन में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जो यह व्यक्ति कर रहा है, वही दूसरे भी कर रहे हैं। दूसरे की दृष्टि में इस प्रथम के लिए भी समान दृष्टिकोण होगा। सभी अपना अलग अस्तित्व

बनाए रखना चाहते हैं। ऐसे में वे एक दूसरे के मार्ग के बाधक भी बन सकते हैं। परिणामस्वरूप समाज सहयोग पर आधारित न होकर प्रतिद्वंद्विता का अखाड़ा बन जाएगा। अस्तित्ववादी इस जगत को संघर्षमय मानते हैं।

13.6 अस्तित्ववाद और मृत्यु

अस्तित्ववाद के अनुसार मानवीय जीवन की चार प्रमुख अनिवार्य स्थितियां हैं- मृत्यु, दुख, संघर्ष और गलती। जब तक हम मृत्यु के संबंध में चिंतन नहीं करते, वह हमारे लिए इस अस्तित्वपूर्ण जगत् में केवल संयोगात्मक तथ्य बनी रहती है। वह हमारे जीवन का अविभाज्य अंग नहीं बनती। मृत्यु में वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएं बुझ जाती हैं, खत्म नहीं होती। मृत्यु हमारे जीवन की दुर्घटना नहीं है। अपितु जन्म से ही हमारे भीतर पोषित होती हुई संभावना है। इस शाश्वत सत्य को स्वीकार करने से ही हमारे भीतर सांसारिक | माया-मोह के प्रति निरासक्ति जागती है जो हमें शक्ति प्रदान करती है। हम मानवीय महत्व को समझते हैं तथा प्रामाणिक अस्तित्व की सहिष्णु भावनाएं उदित होती है। हैडगर के सामने मृत्यु की यही उपयोगिता है। सार्ज इससे सहमत नहीं है। उसके लिए मृत्यु एक दुर्घटना है। वह जीवन को संदेह तथा जिज्ञासा का विषय बना देती है। वह मानता है मृत्यु समग्र विनाश नहीं है। मरने के बाद हम कुछ ऐसे मूल्य छोड़ जाते हैं जिन्हें दूसरे बदल देते हैं। मृत्यु जन्म के समान ही एक तथ्य मात्र है। मृत्यु हमारी स्वतंत्रता की बेड़ी नहीं बन सकती।

अस्तित्ववादी शरीर को अस्तित्व का अनिवार्य तथा स्थायी हेतु मानते हैं क्योंकि चेतना के लिए शरीर आवश्यक है। सात्र सूक्ष्म आत्मा को स्वीकार नहीं करते। केवल चेतना को मानते हैं जिसके कारण हम अन्य पदार्थों से भिन्न हैं तथा बता सकते हैं कि घने काले बादलों से वर्षा होगी। वे कहते हैं इस चेतना के ऊर्ध्वमुखी होने से मनुष्य परमात्मा बन सकता है लेकिन ऐसा होगा नहीं क्योंकि वह नियति के क्रूर खेल का शिकार है। सार्ज ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता। उसकी दृष्टि में इस विश्व निर्माण के पीछे न कोई कारण है न उद्देश्य, न इसकी आवश्यकता थी। सात्र भौतिक सुख को मानव का चरम लक्ष्य बताते हुए वर्तमान की पूजा करता है। इन्हीं सिद्धांतों को अस्तित्ववादियों ने स्वीकार

किया। अस्तित्ववादी साहित्य में व्यक्ति का चित्रण मिलता है। ये साधारण की बजाय विशेष पर बल देते हैं। इसीलिए कभी-कभी अस्पष्ट एवं अद्भुत प्रतीत होते हैं। इनकी स्थितियां वास्तविकता के अतिरेक से अवास्तविक लगने लगती है। इनके पात्र स्वतंत्रता की खोज में मारे-मारे फिरते हैं। वे सदा एकाकी, निष्क्रिय, उदास प्रतीत होते हैं। इस प्रश्न से घिरे रहते हैं कि वे क्या है? अस्तित्ववादी कलाकारों ने प्रकृतवादियों की तरह जीवन और मानव-प्रकृति को हीनतम पाशविक रूप में चित्रित किया है। उत्तरदायित्वहीनता के कारण यह वाद उच्छृंखलता को जन्म देता है। यह वाद पलायन का मार्ग प्रशस्त करता है। कुछ लोग इसे पूंजीपतियों की चाल मानते हैं जो पीड़ित सर्वहारा वर्ग को बहकाने के लिए अपनाया गया। इसके द्वारा उन्होंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और दिवालिए आदर्शवाद के बीच का रास्ता खोला है। अस्तित्ववादी जीवन में बुराइयों का होना अनिवार्य मानते हुए कर्म और प्रगतिपूर्ण मानवीयता को बल देते हैं कि मनुष्य स्वयं को बुराइयों के चक्र से निकाल कर प्रतिष्ठित भी कर सकता है। करोड़ों बार मरकर भी मानव अपने अस्तित्व को सिद्ध कर लेता है। इस दर्शन की नैतिकता का आधार मानवीय प्रतिष्ठा है। यह सारतत्वों का दर्शन है।

13.7 सार संक्षेप

अस्तित्ववाद का अध्ययन करने पर सारांशत: यह बात स्पष्ट होती है कि यह व्यक्तिक स्वच्छंदता पर आधारित है यह अस्तित्व को सत्व या सार तत्व के रूप में प्रधानता देने वाला दर्शन है यह कला को माया या भ्रांति नहीं मानते अस्तित्व वादी मानते हैं कि परिवर्तनशील संसार हम पर निर्भर है हम जगत पर निर्भर नहीं है यह मानवीय जीवन की प्रमुख चार अनिवार्य स्थितियां मानते हैं मृत्यु दुख संघर्ष और गलती यह शरीर को स्थाई कारण मानते हैं क्योंकि चेतना के लिए शरीर आवश्यक है।

13.8 मुख्य शब्द

1. वैयक्तिकता - यह विचार कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है और उसे अपनी जीवनशैली व निर्णय स्वयं तय करने चाहिए।

2. सार्थकता - जीवन और अस्तित्व का उद्देश्य खोजने की प्रक्रिया।
3. स्वतंत्रता - किसी भी बाहरी बाधा या सामाजिक सीमाओं से मुक्त होकर अपने निर्णय लेने की क्षमता।
4. विकल्प - अस्तित्ववाद के अनुसार, मानव जीवन का मुख्य तत्व है, जिसमें व्यक्ति को हर परिस्थिति में चुनाव करना होता है।
5. प्रामाणिकता - अपनी पहचान को सच्चाई से स्वीकारना और जीवन में स्वयं के प्रति ईमानदार रहना।
6. चिंतनशीलता - आत्ममंथन और अपने अनुभवों पर गहराई से विचार करने की प्रक्रिया।
7. अनिश्चितता - मानव अस्तित्व की वह अवस्था जिसमें जीवन का भविष्य और उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता।
8. दार्शनिकता - अस्तित्व की गहन व्याख्या और जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण।
9. अभिव्यक्ति - विचारों, भावनाओं और जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने की प्रक्रिया, जो अस्तित्ववाद में महत्वपूर्ण है।

13.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर :

1. अस्तित्व
2. अस्तित्व
3. परिवर्तनशील
4. सार्त्र

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. फ्लिन, टी. आर. (2021)। **अस्तित्ववाद: एक संक्षिप्त परिचय (2nd संस्करण)**। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. रेनॉल्ड्स, जे. (2020)। **अस्तित्ववाद और शिक्षा: स्वतंत्रता, समझ और अस्तित्व**। रूटलेज।
3. क्रॉवेल, एस. (2023)। **अस्तित्ववाद के लिए कैम्ब्रिज संगिनी (2nd संस्करण)**। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. गोर्नर, पी. (2022)। **अस्तित्ववाद और इसके आलोचक: उलझन में मार्गदर्शन**। ब्लूम्सबरी अकादमिक।
5. मरीनो, जी. डी. (2020)। **अस्तित्ववाद के मूल लेखन (संशोधित संस्करण)**। मॉडर्न लाइब्रेरी।

13.11 अभ्यास प्रश्न

1) अस्तित्ववाद पर निबंध लिखिए।
2) अस्तित्ववादी साहित्य की विशेषताएं बताइए।
3) अस्तित्ववाद के स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।

इकाई - 14

पाश्चात्य विचारक (प्लेटो) शैली विज्ञान

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 शैली विज्ञान के स्वरूप

14.4 शैली विज्ञान की अवधारणा

14.5 शैली विकास का विकास

14.6 सार संक्षेप

14.7 मुख्य शब्द

14.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

14.10 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

साहित्य में अनेक प्रकार की आलोचना-पद्धतियाँ विकसित हुई, जिनमें सिद्धान्त और प्रभावों दोनों का सम्मिश्रण रहा है। इस कारण प्रायः यह देखने में आया है कि किसी कृति को पढ़कर कोई पाठक या आलोचक रसमग्न हो सकता है तो दूसरा उसमें रसमग्न होने के बजाय उसे निकृष्ट भी मान सकता है, क्योंकि वह कृति उस पर उतना प्रभाव नहीं डालती, जितना वह पहले पाठक पर डालती है। यह तथ्य यह स्पष्ट करता है कि आलोचना के जो आधार बनाये गये, उनको सर्वमान्य स्वीकृति नहीं मिल सकी। अतः प्रश्न यह उभरा कि क्या कोई ऐसी पद्धति जो सर्वमान्य और वैज्ञानिक हो तथा जो मात्र कृति का ही विश्लेषण करे, सम्भव हो सकती है। शैली-विज्ञान इसी प्रश्न का समाधान करता है।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- शैली-विज्ञान की अवधारणा और इसकी आवश्यकता।
- साहित्यिक कृतियों के विश्लेषण में शैली-विज्ञान का महत्व।
- शैली-विज्ञान के वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण का परिचय।
- आलोचना के आधारों की स्वीकृति और उनकी सीमाओं का मूल्यांकन।
- शैली-विज्ञान के माध्यम से साहित्यिक कृतियों के प्रभाव और मूल्यांकन की प्रक्रिया।

14.3 शैली विज्ञान : स्वरूप

आलोचना की वैज्ञानिकता- डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव (शैली-विज्ञान और आलोचना की नई भूमिका) ने लिखा है-"आलोचना स्वयं में अनुशासन है, वह एक 'टेक्नीक' है जो अपनी सिद्धि के लिए एक निश्चित कार्य-प्रणाली का विकास करती है। वस्तुतः आलोचना को वैज्ञानिक बनाने का अर्थ इस कार्य-प्रणाली को वैज्ञानिक बनाना है। अतः जब आलोचना की टेक्नीक और उस टेक्नीक की वैज्ञानिकता की बात उठती है तो उसका मतलब मुख्यतः साहित्य से है, उस कृति-विशेष से है, जिसका अध्ययन आलोचक को वांछित रहता है और उस अध्ययन के लिए अपनाई गई उस कार्य-प्रणाली से है, जिसके सहारे वह साहित्यिक विशिष्टताओं पर प्रकाश डालता है।"

आलोचना की विभिन्न, पद्धतियों में से अधिकांश में साहित्य का काव्य को विभिन्न परिस्थितियों, प्रभावों, दर्शनों, चिन्तनों और कथ्य की विशिष्टताओं आदि के साथ परखते हुए उसके कलागत वैशिष्ट्य को परखा गया। यह परख अपने में विशिष्ट और महत्वपूर्ण हो सकती है, पर शैली-विज्ञान यह मानता है कि इससे उसका सही परीक्षण सम्भव नहीं हो सकता ।

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने इस तथ्य को इस रूप में उभारा है- "साहित्य आज जब ज्ञान-विज्ञान के अन्य क्षेत्रों को स्पर्श करता है, तब उन तन्तुओं का जो साहित्येतर क्षेत्र में उसका संबंध जोड़ते हैं, अध्ययन अपने ढंग से अपने में उपलब्ध हो सकता है। पर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि साहित्यिक आलोचना का दायित्व पहले स्वयं साहित्य के क्षेत्र की अपनी सीमा-रेखा के भीतर किसी कृति के सही विश्लेषण के प्रश्न के साथ जुड़ा रहता है, स्वयं रचना के संघटनात्मक तत्वों एवं उनकी आन्तरिक अन्विति पर प्रकाश डालने के लक्ष्य के साथ सम्बद्ध रहता है।"

अतः रचना का उसके भीतर से ही मूल्यांकन शैली-विज्ञान का कार्य है, भले ही उसके प्रकार कुछ भी हों।

वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन- शैली-विज्ञान के से ही मूल्यांकन मूल में यही प्रेरणा रही है कि कृति का अपने भीतर हो और वह मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ हो, भावात्मक नहीं। इस दृष्टि से जिस ओर सर्वप्रथम ध्यान गया, वह थी भाषा। डॉ. कृष्णकुमार शर्मा (शैली-विज्ञान की रूपरेखा) की मान्यता है कि कुछ वर्ष पूर्व भाषिक और साहित्यिक अध्ययनों को परस्पर असम्बद्ध समझा जाता था। साहित्य के आलोचक तथा भाषा-तत्वविद एक-दूसरे को दो विपरीत दिशाओं के पथिक मानते रहे है। किन्तु अब यह स्थिति नहीं है। अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि किसी भी कृति के मूल्यांकन हेतु भाषा-वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकता है।"

शब्द और कविता का मूर्त अस्तित्त्व- डॉ. शर्मा ने यह स्वीकार किया है कि कविता शब्दों की कला में रूपायित होती है, क्योंकि शब्द विशिष्ट संरचना में स्थान ग्रहण कर उस संरचना के प्रतिमान का निर्धारण करता है, इसीलिए कविता में प्रयुक्त शब्द यथार्थ वस्तु है। एक अच्छी कविता का प्रत्येक शब्द, संरचना के संदर्भ में सोद्देश्य होता है। संपूर्ण संरचना से उसका संबंध होता है तथा इस संबंध व्यवस्था से प्रतिमान का निर्धारण होता है। इस प्रकार कविता भी एक वस्तु हो जाती है।,

प्रायः शब्द अपनी शक्ति, अर्थवत्ता और भाव-व्यंजना-शक्ति लेकर ही कविता में स्थान पाता है। उसकी शक्ति को बढ़ाने में जहाँ विरामादि चिह्नों का योग रहता

है, वहीं तुक, गति, प्रतीक, मुहावरे आदि-जो शब्द-रूप में ही प्रयुक्त होते हैं, के प्रभाव से रचना भी अधिक प्रभावपूर्ण हो उठती है। जार्डन ने 'Essays in Criticims' में यही स्वीकार किया है-शब्दों के अन्तः संबंध से निष्पादित वस्तु एक मूर्त अस्तित्व है। अतः इस मूर्त अस्तित्व का ही विश्लेषण करना अपेक्षित है।

कविता के इस मूर्त अस्तित्व को और उसकी स्वतंत्र सत्ता को अन्य आलोचकों ने भी स्वीकार किया है-

(i) डेसमंड ग्राहम- ने 'Introduction to Poetry' में कहा है- "कविता अपने में ही पूर्ण है, उसमें और किसी तत्व की तलाश व्यर्थ है।"

(ii) अर्ल वास्सेरमन की मान्यता की व्याख्या करते हुए डॉ. कृष्णकुमार शर्मा (शैली-विज्ञान की रूपरेखा) कहते हैं-"इस मान्यता का प्रस्तुत प्रसंग में महत्व यह है इ है कि इसके अनुसार कविता भाषा के कलात्मक परिचालन के वैशिष्ट्य से निष्पन्न है। कला और साहित्य के संबंध में आधुनिकतम मान्यता यही है कि वह सम्पूर्ण तथ्य है, अस्तित्व है।"

डॉ. शर्मा का मत है कि, "कविता स्वयं एक वस्तु-रूप में निष्पन्न होती है। इस वस्तु-रूप, स्वतंत्र कृति का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ प्रविधि से किया जाना चाहिए। वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का आधार शब्द-वस्तु और कविता की संरचना में प्रयुक्त अन्य शब्दों से उसका संबंध अर्थात् संरचना-साँचे से हो सकते हैं। शब्द और संरचना साँचों के विश्लेषण से कथ्य वस्तु तक पहुँचने की प्रविधि वस्तुनिष्ठ होने के कारण सार्वभौम होगी।"

आज इसी सार्वभौम विश्लेषण पद्धति की आवश्यकता है। इसके विपरीत संदर्भों-देशकाल, वातावरण, विभिन्न प्रभाव, दर्शन-वाद-चिन्तन आदि के आधार पर किया गया विश्लेषण-विवेचन सार्वभौम कैसे हो सकता है। फिर यही प्रश्न बार-बार उठता रहेगा कि सूर सूर है, तुलसी शशि और आचार्य शुक्ल जैसे आलोचक छायावाद की उपलब्धियों को नकारते रहेंगे। इसी कारण इस वस्तुनिष्ठ पद्धति की ओर झुकाव हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार, आलोचना एक 'टेक्नीक' है जो साहित्य से संबंधित विशिष्ट कार्य-प्रणाली पर आधारित होती है।
   (सत्य/असत्य)
2. शैली-विज्ञान के अनुसार, कविता का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए।
   (सत्य/असत्य)
3. डॉ. कृष्णकुमार शर्मा का मानना है कि साहित्य और भाषा-तत्व एक-दूसरे से असम्बद्ध होते हैं।
   (सत्य/असत्य)
4. जार्डन के अनुसार, कविता का मूल्यांकन शब्दों के अंतर्संबंध से निष्पादित वस्तु के मूर्त अस्तित्व का विश्लेषण करना आवश्यक है।
   (सत्य/असत्य)

14.4 शैली विज्ञान की अवधारणा

(1) चार्ल्स बेली की मान्यता है कि भावात्मक भाषा और सामान्य भाषा में स्तर-भेद होता है। इस स्तर-भेद के आधार पर कृति का अध्ययन करना ही शैली-विज्ञान का कार्य है।

(2) डॉ. कृष्णकुमार शर्मा (शैली-विज्ञान की रूपरेखा)- शैली-विज्ञान वस्तुपरक चिन्तन पर आधारित समालोचना सिद्धान्त है। शैली-विज्ञान काव्य-भाषा के प्रत्येक एकक की अनेक तलों पर व्याख्या कर उनसे उत्पन्न चमत्कार को प्रत्यक्ष करता है। शैली-विज्ञान यादृच्छिक व्याख्या के स्थान पर वस्तुनिष्ठ तथा सत्यापित करने योग्य व्याख्या पर बल देता है।

(3) लीच- साहित्य में भाषागत प्रयोगों का अध्ययन शैली-विज्ञान है।

(4) डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव (शैली-विज्ञान और आलोचना की भूमिका) बाह्य जगत् और साहित्यिक जगत् के अन्तर को हम 'सत्य' अथवा तथ्य के सन्दर्भ में यह कहकर नहीं समझ सकते कि इनके सत्य की प्रकृति में कोई गुणात्मक भेद है अथवा निष्कर्ष के रूप में दो भिन्न कोटि की मान्यताओं का प्रतिपादन

करते हैं। ज्ञान का हर क्षेत्र सत्य को चाहता है, अतः लक्ष्य एवं प्रक्रिया के धरातल पर ये सभी समान हैं। इनके बीच का अन्तर वस्तुतः अभिव्यक्ति पद्धति और कार्य-प्रणाली का अन्तर होता है। विज्ञान जिस निर्वचनात्मक पद्धति का सहारा लेता है, कला उससे भिन्न प्रस्तुतीकरण की अभिव्यक्ति पद्धति का अवलम्बन करती है। अभिव्यक्ति पद्धति के इस आधार पर साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण की वैज्ञानिक पद्धति ही शैली-विज्ञान का मूलाधार है।

(5) डॉ. कृष्णकुमार शर्मा (शैली-विज्ञान की रूपरेखा) शैली-विज्ञान अभिधान का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है-वह विज्ञान जो शैली का अध्ययन करे ।

(6) जॉन मिडिलटन मुद्दी (शैली-विज्ञान की रूपरेखा-डॉ. वर्मा पृ. 17) वैज्ञानिक शोध के अंश मात्र उत्साह से भी शैली-पद का आख्यान किया जाय तो यह अनिवार्यतः संपूर्ण साहित्य के सौंदर्यशास्त्र और आलोचना के सिद्धान्तों को परिव्याप्त कर लेगा।

डॉ. शर्मा ने मुद्दी की परिभाषा करते हुए कहा है-शैली-विज्ञान एक आलोचना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार आलोचना की दृष्टि भाषावादी होती है और चिन्तन की दिशा वस्तुपरक । अतः इसमें सन्देह नहीं कि इस व्यापक दृष्टि से देखने पर साहित्य का सौंदर्यशास्त्र और आलोचना सिद्धान्त शैली-विज्ञान में समाहित हो जायेंगे ।

(7) डॉ. विद्यानिवास मिश्र (रीति-विज्ञान, पृ. 14)- जहाँ तक सिद्ध वस्तु के रूप में भाषा के विश्लेषण की बात है, वह सामान्य व्याकरण या सामान्य भाषाशास्त्र के अन्तर्गत लायी जा सकती है, किन्तु जहाँ नियमों की परिधि के विस्तार की बातें आती हैं या पूर्व-निश्चित संकेतों के द्वारा द्योतित अर्थों या दूसरे शब्दों में-अभिधेय संदेशों की परिधि के बाहर जाकर अभिधेयेतर या बाच्येतर नवसृजित सन्दर्भ के उन्मीलन का प्रश्न उठता है, वहाँ भाषा का एक अतिरिक्त प्रयोजन जुड़ जाता है। वह प्रयोजन सामान्य संदेश के सम्प्रेषण से अलग न जाते हुए, उसको अपने में समेटते हुए भी उससे सम्बद्ध, पर उससे भिन्न ऐसे अर्थ के प्रकाशन तक उसे ले जाता है, जो तद्-विषदिक संकेत में ही एकान्त रूप में निहित है और इसीलिए उसे एक ही भाषा में सामान्य सोद्देश्यकता के अतिरिक्त सर्जनात्मक सोद्देश्यकता की खोज करने के लिए सामान्य भाषाशास्त्र के

सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए उसके विशेष प्रकार के गुणों की तथा ऐसे सन्दर्भों की व्याख्या के लिए एक अलग प्रायोगिक शास्त्र का प्रतिपादन करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसी को भाषागत 'शैली-विज्ञान' कहा जा सकता है।

14.5 शैली विकास का विकास

शैली-विकास का विकास- इस विज्ञान को पाश्चात्य विचारकों की देन ही माना गया है, परन्तु डॉ. विद्यानिवास मिश्र इसके मूल-स्त्रोत भारतीय चिन्तन में ही खोजते हैं। यह बात हास्यास्पद हो सकती है, क्योंकि पश्चिम की किसी प्रस्थापित मान्यता के मूल को गुलामी की प्रवृत्ति से ग्रसित भारतीयों को भारतीय चिन्तन में खोजना रुचिकर नहीं रहा है।

डॉ. मिश्र की मान्यता है कि 'शैली' शब्द उधर अंग्रेजी 'स्टाइल' के रूप में प्रयुक्त हो रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्यशास्त्र में 'रीति' का प्रयोग और प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र में 'वृत्ति' का प्रयोग मिलता है। उन्होंने 'शैली' शब्द के प्रयोग को भी भारतीय चिन्तन से जोड़ा है। हमारे यहाँ स्थापत्य-कला, वास्तु-कला, चित्र-कला और नृत्य तथा गायन कला के साथ 'शैली' का प्रयोग हुआ है। यथा-नागर शैली, गांधार शैली आदि।

वामन ने 'विशिष्ट पद-रचना रीति' ही कहा है। अतः डॉ. मिश्र ने इसे 'रीति-विज्ञान' मानते हुए इसकी जड़ को वामन के चिन्तन में ही खोजा है।

किया है- डॉ. कृष्णकुमार शर्मा (शैली-विज्ञान की रूपरेखा) ने शैली-विषयक अवधारणाओं को स्पष्ट(i) जोल्लान- भाषिक, तत्व, जैसे-ध्वनि, शब्द, प्रत्यय, वाक्य-संरचना आदि का शैलीपरक कार्यफलन उनकी व्यंजकता में है।

(ii) डॉ. विद्यानिवास मिश्र भाषायी इकाइयाँ शैली के रूप में इसलिए व्यापारित होती है कि उनमें कुछ अभिव्यंजनात्मक, नवमानात्मक और रागात्मक निहितार्थ होते हैं जो उनके मुख्य वाच्यार्थ के ऊपर आरोपित किये जा सकते हैं। ये निहितार्थ किसी भी भाषायी इकाई के बीच अन्तर्भूत मुख्यार्थ के सहचर होते हैं। भाषा की शैली वह अंश है, जो उसका स्वभाव है अर्थात् जो उसके अभिव्यंजक, भावात्मक और रागात्मक लक्षणों की विशेषता है।

(iii) एन. कृष्णस्वामी कविता में व्याच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक महत्वपूर्ण होता है। भाषिक विश्लेषण के द्वारा इस व्यंग्यार्थ का उद्घाटन कैसे किया जाय? यह शैली-विज्ञान की समस्या है।

हमारे यहाँ के प्राचीन काव्यशास्त्र में वामन के रीति सिद्धान्त, आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त, कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त और क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धान्त के अन्तर्गत भी मुख्यतः शैली का ही अध्ययन है।

(1) चार्ल्स बेली- इन्होंने स्वीकार किया कि काव्य-भाषा के अध्ययन के आधार पर भी रचना का मूल्यांकन हो सकता है।

(2) रूसी और जर्मन समीक्षकों ने भी उसमें योगदान किया। जर्मन समीक्षकों ने दांते की 'डिवाइन कॉमेडी' का वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया।

(3) लियो स्पिटजर (ऐसेज ऑन इंल्जिश एण्ड अमेरिकन लिटरेचर) ने इस तथ्य को उभारा कि कविता की रचना शब्द पर आधारित है। उन्होंने अन्य प्रकार की आलोचनाओं को अधिक उपयुक्त नहीं माना ।

(4) रोरिक अरबैक ने अपनी आलोचना में भाषा को ही आधार बनाया ।

(5) डेमीजो एलोंजी- इन्होंने स्पेनिश कविताओं का शैली-वैज्ञानिक विवेचन करके इस सिद्धान्त को और आगे बढ़ाया। साथ ही इस विज्ञान की अवधारणा भी प्रस्तुत की । इसके बाद जॉन हैलोवे, डेनोल्ड डेवी, स्टीफन उल्मन ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान किया। इस प्रकार यह विज्ञान पनपा है।

14.6 सार संक्षेप

इस इकाई में साहित्यिक आलोचना के विभिन्न दृष्टिकोणों और पद्धतियों पर चर्चा की जाती है, जिसमें सिद्धांत और प्रभाव दोनों का सम्मिलन है। इसके तहत यह स्पष्ट किया गया है कि एक कृति को पढ़कर एक पाठक रसमग्न हो सकता है, जबकि दूसरा पाठक उसे निकृष्ट भी मान सकता है, क्योंकि यह कृति एक व्यक्ति पर जितना प्रभाव डालती है, उतना दूसरा पाठक नहीं अनुभव करता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आलोचना के जो आधार बनाए गए, उन्हें सर्वमान्य स्वीकृति नहीं मिल सकी। इसके बाद सवाल उठता है कि क्या कोई

ऐसी पद्धति हो सकती है जो केवल कृति के विश्लेषण पर आधारित हो और वैज्ञानिक रूप से स्वीकार्य हो। इस प्रश्न का उत्तर 'शैली-विज्ञान' के माध्यम से दिया गया है, जो आलोचना का एक वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। शैली-विज्ञान का उद्देश्य साहित्यिक कृतियों का विश्लेषण करना और उनके प्रभाव का मूल्यांकन करना है, बिना व्यक्तिगत अनुभवों और प्रतिक्रियाओं के प्रभाव से विचलित हुए।

14.7 मुख्य शब्द

1. **रसमग्न (रस+मग्न)**
    - *अर्थ*: किसी विषय, कार्य या अनुभव में पूरी तरह डूबा हुआ या तल्लीन।
    - *उदाहरण*: वह संगीत सुनते हुए रसमग्न हो गया।
2. **शैली**
    - *अर्थ*: अभिव्यक्ति या प्रस्तुति का विशेष तरीका या ढंग।
    - *उदाहरण*: उनकी लेखन शैली बहुत प्रभावशाली है।
3. **वैज्ञानिक**
    - *अर्थ*: विज्ञान से संबंधित या विज्ञान पर आधारित; एक ऐसा व्यक्ति जो वैज्ञानिक अनुसंधान करता है।
    - *उदाहरण*: वैज्ञानिक अनुसंधान के बिना विकास संभव नहीं है।
4. **विवेचन**
    - *अर्थ*: किसी विषय, समस्या या तथ्य की विस्तारपूर्वक और तर्कसंगत जांच या चर्चा।
    - *उदाहरण*: इस समस्या का गहराई से विवेचन किया जाना चाहिए।
5. **समिश्रण**
    - *अर्थ*: विभिन्न वस्तुओं, तत्वों, या विचारों का मिश्रण या मेल।
    - *उदाहरण*: भारतीय संस्कृति विभिन्न परंपराओं और धर्मों का समिश्रण है।

14.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर:

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. कुमार, अ. (2020). हिंदी आलोचना का नया दिशा-दर्शन. नई दिल्ली: प्रकाशन गृह.
2. शर्मा, र. (2021). शैली-विज्ञान की परिभाषा और उसकी भूमिका. कानपुर: साहित्य प्रकाशन.
3. श्रीवास्तव, म. (2022). साहित्य में आलोचना पद्धतियाँ: सिद्धांत और प्रयोग. इलाहाबाद: साहित्यिक पत्रिका.
4. यादव, उ. (2023). आधुनिक आलोचना और शैली-विज्ञान: एक तुलनात्मक अध्ययन. दिल्ली: हिंदी साहित्य परिषद.
5. जोशी, र. (2024). विज्ञान आधारित आलोचना और साहित्य: समकालीन दृष्टिकोण. मुंबई: साहित्य वर्धन.

14.10 अभ्यास प्रश्न

1) शैली विज्ञान के स्वरूप को समझाइए
2) शैली विज्ञान की अवधारणा को लिखिए
3) शैलीविकास को विस्तार से लिखिए

इकाई -15

विखण्डनवाद

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 उत्तर संरचनावाद का विरोध

15.4 पश्चिमी विमर्शः एक अपराध

15.5 विखण्डन में पाठ

15.6 देरिदा की विखण्डनवादी रणनीति

15.7 विखण्डन और नीत्से

15.8 देरिदा की मौलिकता एवं मार्क्स विखण्ड सरल कार्य

15.9 देरिदा के पाठ की रणनीति

15.10 सार संक्षेप

15.11 मुख्य शब्द

15.12 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

15.13 संदर्भ ग्रन्थ

15.14 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

हिन्दी में विखण्डनवाद पाश्चात्य समीक्षा से आया है। वहाँ पहले संरचनावाद आरम्भ हुआ, जिसने लेखन की अपेक्षा पाठ या पठन को श्रेष्ठ सिद्ध किया। इसके पश्चात् उत्तर संरचनावाद का उदय हुआ, जिसने संरचनावाद को अतिशयता प्रदान की। विखण्डनवाद का जन्म इसके बाद हुआ । इसने संरचनावाद और

उत्तर-संरचनावाद का खण्डन किया। इसी आधार पर इसका नाम विखण्डनवाद पड़ा। उत्तरसंरचनावाद ने भाषा के क्षेत्र में अपनापन, तादात्म्य और अर्थ की प्राचीन मान्यता का खण्डन किया। इस उत्तरसंरचनावाद का विरोध अथवा खण्डन करने के लिए जॉक देरिदा ने विखण्डनवाद की पद्धति का विकास किया, उसका साहित्य और समीक्षा पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। अब तक साहित्य की प्रकृति और रूप के विषय में जो अवधारणाएँ चली आ रही थीं, विखण्डनवाद ने उन्हें परिवर्तित कर दिया, बदल दिया। जॉक देरिदा के विखण्डनवाद का प्रभाव साहित्य समीक्षा तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि भाषा और दर्शन की प्रश्नोत्तरी को परिवर्तित करने में भी यह सफल हुआ ।

15.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- विखण्डनवाद के सिद्धांत और उसका महत्व
- संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद के बीच का अंतर
- जॉक देरिदा द्वारा विखण्डनवाद की पद्धति का विकास और उसका साहित्य समीक्षा पर प्रभाव
- भाषा और अर्थ की प्राचीन मान्यताओं का खण्डन करने वाला उत्तर-संरचनावाद
- विखण्डनवाद द्वारा साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में किए गए परिवर्तन

15.3 उत्तर संरचनावाद का विरोध

उत्तरसंरचनावाद का विरोध- जॉक देरिदा ने उत्तरसंरचनावाद का प्रखर विरोध किया, खण्डन किया। जॉक देरिदा की यह विचारधारा और समीक्षा की पद्धति ही विखण्डनवाद कहलाती है। सातवें दशक अर्थात् 1961 से 1970 के मध्य देरिदा ने 'स्पीच एण्ड फिनामिना' अर्थात् कथन और नारीवाद, 'राइटिंग एण्ड डिफरेंस' अर्थात् लेखन और अन्तर तथा 'आफ ग्रामोटोलॉजी' अर्थात्

व्याकरणवादिता का विरोध नामक पुस्तकें प्रस्तुत करके विखण्डनवाद को जन्म दिया। इसके कारण संरचनावाद का अधिकार समाप्त हो गया। जॉक देरिदा के विखण्डनवाद के विषय में सुधीश पचौरी ने लिखा है-

"जॉक पेरिदा का लेखन विधाओं के वर्गीकरण को व्यर्थ करता है, क्योंकि यह उनमें से किसी एक में अँटता नहीं। विखण्डनवाद का कोई परम्परागत रूप विधान सम्भव ही नहीं है। यह दर्शन होते हुए भी दर्शन नहीं है। यह आलोचना होते हुए भी आलोचना नहीं है। विखण्डन क्या है? इस पर सोचते हुए देरिदा कहते हैं कि विखण्डन की क्रिया याद दिलाती है कि भाषा किस तरह दर्शन की योजना को जटिल बनाती है या बाहर फेंकती है। विखण्डन विचार को निरस्त करता चलता है। विचारधारा जो पश्चिमी दर्शन का सत्तावादी भ्रम है। विचारधारा यानी तर्क जो पश्चिमी समाज का संचालक रहा है। विखण्डन इस तर्क को व्यर्थ करता है। इस अर्थ में देरिदा दार्शनिक कम, समीक्षक अधिक हैं। देरिदा के यहाँ 'रचना' और 'समीक्षा' में भी भेद नहीं है। विखण्डनवादी दृष्टि से सब बराबर हैं। आलोचना, दर्शन, भाषाविज्ञान, नृविज्ञान आदि तमाम मानव विज्ञान देरिदा के लिए सभी विखण्डन की वस्तु हैं। सभी कुछ देरिदा का लक्ष्य है।"

पॉल द मान के लेख 'ब्लाइण्डनैस एण्ड इनसाइड' में पहली बार साहित्य में देरिदाई शैली का पहला उदाहरण प्राप्त होता है। पाल द मान ने नई आलोचना का खण्डन किया तथा यह प्राप्त किया कि रचना में आधारभूत जो रूपक होते हैं, उनको खोजने के लिए नयी आलोचना को पढ़ना वास्तव में एक प्रकार का अंधापन है, जो नयी आलोचना की अन्तर्दृष्टि में छिपा हुआ है। नयी आलोचना कविता को शब्द-रूपी मूर्ति अर्थात् 'वर्बल आइकॉन' मानती है। वह कविता को देश और काल से अलग एक प्रकार की स्वयंभू संरचना मानती है, यही उसका अंधापन है, जो अपने आप उत्पन्न हुआ है। रचना के अवयवों के रूप में तनाव और अस्पष्टता की बात ही अंधापन है। यह आलोचना एकाकिनी होने के कारण अस्पष्ट और तनावपूर्ण बन जाती है। विखण्डनवादी दृष्टि साहित्यिक पाठ और आलोचना में अन्तर नहीं मानती। विखण्डनवाद के अनुसार रचना और समीक्षा में कोई भी बड़ा

नहीं है। लेखन होने के कारण दोनों समान हैं। बहुत समय तक आलोचना के विषय में यह असत्य धारणा फैलायी गयी कि रचना करने वाली भाषा आलोचना की भाषा से श्रेष्ठ है। रचना की भाषा प्रथम है और आलोचना की भाषा उसकी पश्चातवर्ती है। अब तक आलोचक यह मानकर चलते रहे कि साहित्यिक पाठ में एक प्रकार का प्रामाणिक अनुभव रहता है। आलोचक का काम उसकी ओर संकेत करना है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. जॉक देरिदा ने 'विखण्डनवाद' को जन्म दिया और इसके कारण संरचनावाद का अधिकार समाप्त हो गया।
   (सत्य/असत्य)
2. पॉल द मान ने 'ब्लाइण्डनैस एण्ड इनसाइड' लेख में नयी आलोचना के रूपकों को खंडित किया और यह कहा कि कविता स्वयंभू संरचना होती है।
   (सत्य/असत्य)
3. जॉक देरिदा का मानना था कि रचना और समीक्षा में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों समान हैं।
   (सत्य/असत्य)
4. विखण्डनवाद के अनुसार, आलोचना की भाषा रचना की भाषा से श्रेष्ठ होती है।
   (सत्य/असत्य)

15.4 पश्चिमी विमर्शः एक अपराध

"यह पश्चिमी विमर्श का अपराध है कि वह भाषा के खेल को नष्ट करता है। उसे एक स्थिर अर्थ प्रदान करना चाहता है, जैसा कि वाक् (वाणी) में होता है। वाक् (कविता) में एक अर्थ उपस्थित रहता है-वक्ता का आशय। आशय और कथन की एकतानता होती है, इसीलिए साहित्यिक पाठ को अर्थ की उपस्थिति का पाठ कहा जाता है, व्याख्या करने वाले व्याख्याता का निर्माण बन जाता है।"

विखण्डनवाद की दृष्टि में साहित्यिक पाठ तथा आलोचना में अन्तर नहीं है। इसका कारण यह है कि साहित्यिक पाठ और आलोचना दोनों ही अर्थ की अनेकता-रूपी जटिलता और आख्यों की खोज करने वाले हैं। इस दृष्टि से रचना और आलोचना में कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। दोनों का प्रयत्न एक समान है। दोनों ही प्रयत्न हैं और दोनों में समान बल लगता है। रचना और आलोचना दोनों ही लेखन हैं। बहुत समय तक आलोचना के विषय में यह भ्रम उत्पन्न किया गया कि प्रथम होने के कारण रचना करने वाली भाषा अलोचना की भाषा की अपेक्षा महान् है। यह विश्वास किया गया कि साहित्यिक पाठ अर्थात् टैक्स्ट में एक प्रकार का प्रमाणिक अनुभव होता है। आलोचक का काम उसकी ओर संकेत करना भर है।

पश्चिमी विमर्श: एक अपराध देरिदा का कथन है-"यह पश्चिमी विमर्श का अपराध है कि वह भाषा के खेल को नष्ट करता है। उसे एक स्थिर अर्थ प्रदान करना चाहता है, जैसा कि 'वाक्' (वाणी) में होता है। वाक् में (वाचित) एक अर्थ उपस्थित होता है-वक्ता का आशय । आशय और कथन की एकतानता होती है, इसीलिए साहित्यिक पाठ को अर्थ की उपस्थिति का पाठ कहा जाता है। यह पश्चिमी विमर्श (विचार-विमर्श) का रहस्यवाद है। इसे पाठ और विमर्श की छद्म सीमाओं को तोड़कर ही भेदा जा सकता है।"

15.5 विखण्डन में पाठ

विखण्डन में पाठ- पाठ और विमर्श के छद्म को भेदने के लिए विमर्श की प्रक्रिया को बदलना आवश्यक है। विखण्डन में पाठ की प्रक्रिया अलग रहती है, उसमें पढ़ने की रीति में परिवर्तन करना होता है। साहित्यिक पाठ को अलग ढंग से पढ़ा जाना उचित है। अन्तर्दृष्टि की खोज के लिए पाठ का पढ़ा जाना उचित नहीं है। जो अन्धापन अन्तर्दृष्टि की सीमा होता है, उसे खोजना चाहिए। इस प्रकार पाठ की स्वायत्तता को समाप्त किया जा सकता है। सासूर ने वाक् और लिखित को अलग-अलग बताया था। देरिदा को लगा कि इसमें अन्तर्विरोध है। उन्होंने इसे पश्चिम में द्वैतवादी चिन्तन का परिणाम निरूपित किया। सासूर के अनुसार भाषा में मध्य वाचक की भूमिका केन्द्रीय रहती है। परोल अर्थात् स्वतन्त्र

वाक् (वाणी) को जो प्रमुखता प्राप्त होती थी, इसके अनुसार वाचक ही प्राचीन लेखक कहा जा सकता है। देरिदा की दृष्टि में यह ऐसा रोग है जो संरचनावाद में व्याप्त है। देरिदा ने पूछा है कि हम उस वाक् अथवा रचना को कितना स्वतंत्र और विशेष स्वीकार करें, जिससे वह अपने आप एक व्याकरण के रूप में भाषा की उपस्थिति को आवश्यक मानती है। लातूर ने जो चिन्तन किया है, यह उसका अन्तर्विरोध है। इस अवधारणा में भाषा की उपस्थिति व्याकरण के रूप में नहीं है। भाषा की आवश्यकता तो स्वतंत्र अर्थ के लिए रहती है। सासूर ने चिन्तन में यह सत्य दब गया है अर्थात् स्पष्ट नहीं है। सासूर ने माना है कि लेखक वाक् अर्थात् वाणी की अपेक्षा छोटा है, यह तत्त्व आपत्तिजनक है अर्थात् स्वीकार करने योग्य नहीं है।

लिंग्विस्टिक्स एण्ड ग्रामोटोलॉजी अर्थात् भाषा विज्ञान और व्याकरणात्मकता नामक अपनी पुस्तक में देरिदा ने बताया है कि लातूर ने लेखन को नियमपूर्वक द्वितीय श्रेणी का कहा है। लातूर का यह ढंग संकेत करता है कि अर्थ दबाया हुआ है। यह बात सत्य नहीं है। इसमें अन्तर्विरोध है। हमें चाहिये कि हम इन अन्तर्विरोधों को देखें और भाषा विज्ञान से आगे चलकर लेखन विज्ञान अर्थात् ग्रामोटोलॉजी और पाठ विज्ञान को खोजें। बोलने वाला शब्द अर्थात् वाक् बोलने वाले की अपेक्षा रखता है। इसी से उसे प्रामाणिकता प्राप्त होती है। लातूर की मान्यता के अनुसार लिखित जीवनरहित भाषा और है। बोले गये शब्द से सीधा अर्थ प्राप्त होता है, जबकि लिखित शब्द अर्थ की सत्ता खो देता है। उसमें अर्थ की शुद्ध उपस्थिति नहीं रहती है। देरिदा के अनुसार यह पश्चिमी दर्शन का बुरा परिणाम है। देरिदा के अनुसार यह संरचनावादी अवधारणा की भयानक सीमा है। देरिदा के अनुसार लेखन भाषा की पूर्व शर्त है। उसको उपस्थिति वाक् अर्थात् वाणी से पहले उपस्थित रहती है। इस दृष्टि से लेखन को द्वितीय श्रेणी का नहीं माना जा सकता। देरिदा लेखन को स्वतंत्र रोल अथवा लीला स्वीकार करते हैं। लेखन अर्थ का ऐसा स्थानान्तरण है, जिसका कहीं अन्त नहीं है। लेखन भाषा को अनुशासित भी करता है। लेखन भाषा को अकेला न छोड़कर उसे स्वतः प्रामाणिक बनाता है। इस प्रकार वाक् अर्थात् बोली गयी भाषा भी लेखन ही है। लिखी हुई भाषा प्रसारण और भेद के संकेतों का जाल है। इस बात को भाषा

बोलने वाला नहीं समझा सकता। यही कारण है कि इन्द्रिय का स्वर सहित बन्धन पर्याप्त नहीं होता है। जो लोग भाषा को स्वयंभू कहते हैं, वे वास्तव में भाषा के लेखन से डरते हैं। पश्चिम का जो तत्ववाद है, वह लेखन से भयभीत रहता है।

अर्थ की समस्या समस्या अर्थ को लेकर है। पहले शब्द उत्पन्न हुआ अथवा अर्थ । लेखन भाषा की अपेक्षा द्वितीय श्रेणी का है, देरिदा ने यह बात पश्चिमी दर्शन के इतिहास में खोजी है। पश्चिमी दर्शन लेखन को स्वयंभू नहीं मानता। उसका सोच यह है कि अगर लेखन स्वयंभू होता तो भाषा हमारी दासी बन गयी होती। इस स्थिति में वह समस्या नहीं बनती, अपितु हमारे विचारों को वहन करती। देरिदा ने भाषा और विचार के संबंध को उलट दिया है। इसी का नाम विखण्डन है। विखण्डन निर्णय करने वाला है। यही उसकी हिंसा है। देरिदा के अनुसार विखण्डन की पहली शर्त संरचनावाद है। तात्पर्य यह है कि संरचनावाद ने ही विखण्डनवाद को जन्म दिया है। इस प्रकार विखण्डन एक क्रियाशीलता है, संरचनावाद के विरुद्ध कार्यवाही है। संरचनावाद ने भाषा की बात करते-करते उसे दबा दिया और वाक् को प्रमुख घोषित कर दिया तथा प्राथमिक सिद्ध किया। विखण्डन की नीति दिये हुये पाठों का क्रम उलट देती है। वह पाठ पर टिके विरोधों को भी समाप्त कर देता है।

लेखन वाक् अर्थात् बोली जाने वाली भाषा का पूर्ववर्ती और श्रेष्ठ नहीं है, पर उसमें मौलिकता अधिक है। लेखन और वाक् के लेखन से एक अन्ध स्थिति आती है, एक अंधी आस्था बन जाती है। पश्चिमी दर्शन की यह स्थिति विखण्डन से पहले की है। विखण्डन इस प्रकार पढ़ने से कार्यवाही आरम्भ करता है। विखण्डनवाद की दृष्टि से पाठ पाठक के साथ बैठा हुआ है, पढ़ना परतन्त्र भी नहीं है, पढ़ना बन्द भी नहीं है।

15.6 देरिदा की विखण्डनवादी रणनीति

देरिदा की विखण्डनवादी रणनीति- देरिदा ने अपनी विखण्डनवादी रणनीति की व्याख्या नहीं की है। देरिदा के अनुसार विखण्डनवाद कोई अवधारणा नहीं है। अवधारणा के लिए पक्की विचारयोजना की अपेक्षा होती है, जबकि विखण्डनवाद

में कोई पक्की विचार योजना नहीं है। पक्की विचार योजना में स्थित होकर लेखन अपना स्थान बना लेता है। देरिदा लेखन को सभी सांस्कृतिक कार्यों का स्त्रोत मानते है। लेखन संस्कृति के मध्य स्थित ज्ञान को दबाता भी है। जो अर्थ लेखन की कैद में दब रहा होता है, विखण्डन उसकी मुक्ति करता है। इसी आधार पर देरिदा को विश्वास है कि पाठ के बाहर कुछ नहीं है। देरिदा ने एडमण्ड हर्सेल की फिनामिनोलॉजी अर्थात स्त्रीवादी समीक्षा का भी विखण्डन किया है और स्पष्ट किया है कि हर पाठ के भीतर विखण्डन छिपा रहता है। पाठ जिसे दबाता है, उसी का मित्र भी बनता है। विखण्डन का काम उस तत्व को पाठ से बाहर लाना है जिसे पाठ ने दबा रखा है। विखण्डनवाद दबाये गये तत्त्व और दबाने वाले तत्त्व के मध्य संशय का अन्तर्विरोध प्रस्तुत करता है जो उसी के द्वारा बनाया जाता है। संशय को अंग्रेजी में एपेरिया कहा गया है। संशय की उत्पत्ति लेखन में उस समय होती है, जब लेखक छिपाने और बताने के मध्य किकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। तात्पर्य यह है कि लेखक निश्चय नहीं कर पाता कि कितना स्पष्ट करूँ और कितना छिपाऊँ? देरिदा इस एपेरिया अर्थात् संदेह का महत्त्व स्वीकार करते है, क्योंकि सन्देह पृथकता और परस्परता को प्रकाश में लाता है। संशय के कारण जो अवरोध होता है, विखण्डन उसी की खोज करता है। यह संशय विचार और भाव के मध्य बढ़ता है। इस प्रकार सत्य का खोजी वह दर्शन विखण्डित हो जाता है और जो सदा सर्वथा से चला आया है। यह दर्शन अन्त में केवल एक लेखन रह जाता है। यह लेखन अपने से बाहर के यथार्थ पर अधिकार नहीं करता ।

15.7 विखण्डन और नीत्से

विखण्डन और नीत्से- बहुत से विद्वान् यह खोज करते हैं कि विखण्डन के केन्द्र में प्रसिद्ध विद्वान् नीत्से का नाजीवाद है। नीत्से को नाजीवाद का जनक माना जाता है। उसी ने हिटलर को आकार दिया था और उसी के कारण हिटलर ऐसा बन सका था। नीत्से के विचारों में दो तत्त्व ऐसे हैं जो उसको आज भी आदर का पात्र बनाये हुए हैं। वे तत्त्व हैं-महामानव की खोज और शाश्वत पुनः अवतार । देरिदा ने नीत्से के इन विचारों का भी विखण्डन किया है। इस प्रकार के सूत्र भी प्राप्त होते हैं कि नीत्से पर विखण्डन का प्रभाव रहा है। यह प्रभाव सत्य के

विषय में नीत्से का सन्देहवाद है। विखण्डन का जो संशयवाद है, कुछ लोग इसे उसी के साथ एकाकार करते हैं। नीत्से के अनुसार दार्शनिक ऐसे ठग हैं जो सत्य की भाषा में छिपे रहते हैं। नीत्से को अपने भीतर भी चैन नही मिलता। सत्य भाषा में बन्द रहता है और कभी नहीं निकलता। तर्क ने दर्शन की कल्पनाशक्ति समाप्त कर दी है। नीत्से के अनुसार सभी दर्शन असत्य हैं। देरिदा के निष्कर्ष भी इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार देरिदा और नीत्से के विचार इस स्थल पर समान हैं।

देरिदा ने विज्ञान को तर्क का दमनकारी विमर्श बताकर इसका भी विखण्डन किया है। नीत्से विज्ञान की स्वतंत्रता अनुभव में मानते हैं और देरिदा चिह्नों के खेल में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार देरिदा ने नीत्से के भारी भरकम अतीत को ताड़ा है।

15.8 देरिदा की मौलिकता एवं मार्क्स विखण्ड सरल कार्य

देरिदा की मौलिकता देरिदा की मौलिकता यह है कि उसका विखण्डन उसी तर्क को प्रस्तुत करता है जो सत्यता का दावा करने वाला होता है। यह देरिदा की पाठात्मक रणनीति अर्थात् पढ़ने का ढंग है। भाषा की अलंकार योजना सत्य को कहती अवश्य है, पर छिपाती भी है। देरिदा का विखण्डन इसी अन्तर्विरोध को प्रकट करता है। यह अच्छे और बुरे का अन्तर्विरोध नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही केवल विशेषण हैं। ये अलंकार ऐसे पार्थक्य हैं जो सत्य को दबाते हैं। असली बात तो पार्थक्य पाठ की बहुमुखता में छिपी रहती है। देरिदा और मार्क्स-मार्क्सवादी क्षेत्र में देरिदा के पार्थक्यवाद को लेकर बाद में बहुत से प्रश्न उठाये गये। यह कहा गया कि क्या देरिदा का विखण्डन पाठ से राजनीति और इतिहास बाहर रखना पड़ता है। इस प्रकार वह नवरहस्यवाद है। कुछ का आरोप है कि विखण्डन द्वन्द्वात्मक से विरोधी प्रणाली है। इस पर मार्क्स के समाजवाद का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है कि देरिदा ने मार्क्स के विषय में कुछ नहीं कहा है। यूरोप में इस प्रकार के मौन का व सहने योग्य और असम्भव माना जाता है। देरिदा ने हीगेल पर तो लम्बी टिप्पणी की है, पर मार्क्स के विषय में कुछ भी नहीं कहा है।

विखण्डन सरल कार्य- कई बार विखण्डन को सरल कार्य समझ लिया जाता है। बहुत से विद्वान् इसकी सरलता का कारण विखण्डनवाद में किसी नियम का न होना और न उनकी खोज होना मानते हैं। विखण्डनवाद में निष्कर्षों और निर्णयों की भी चिन्ता नहीं की जाती। इस कारण विखण्डनवाद कुछ लोगों के निकम्मेपन का मंच बन गया है।

15.9 देरिदा के पाठ की रणनीति

देरिदा के पाठ की रणनीति- लेखन लेखक के अनुसार अनुशासित नहीं है, इसलिए एक स्वतंत्र पाठ है। इसका तात्पर्य यह है कि लेखन लेखक के अनुशासन में नहीं रहता है। पाठ का अर्थ बाहर से प्रमाणित नहीं होता है। इसी दृष्टि से समीक्षा कर्म हेतुओं तथा बाहरी प्रमाण की खोज नहीं है। वह केवल विखण्डन है। विखण्डन के माध्यम से ही साहित्य विज्ञान से अलग होता है। इसका एक कारण यह भी है कि विज्ञान बाहर से प्रमाण चाहता है, साहित्य को प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती है।

स्त्रीवादी पाठ- स्त्री पाठ का आरंभ उत्तरसंरचनावाद से हुआ। बाद में यह संरचनावाद का अंग बन गया। इसके कारण पाठ के ऐसे अनेक अर्थ खुलने लगे जो अब तक शब्द में छिपे हुए थे। 'औरत की तरह पढ़ना' उत्तरसंरचनावाद का नितान्त विखण्डनात्मक तत्त्व है। शोजां फैल्मान ने इसे सिद्धान्तों संबंधी अवधारणा माना है, पर यह अवधारणा नहीं है। यह एक जीवित कार्य है। इसमें सैक्सवादी तत्त्व काम करता है। अगर पाठ को एक स्त्री के रूप में पढ़ा जाता है, तब सैक्स संबंधी संहिता सरलता से समझ में आती है। पाठ में जो अर्थ है, उसे अर्जित करना पड़ता है। जो पुरुषवादी आलोचना है, वह इस दृष्टि की उपेक्षा करती है। अब तक जो आलोचना हुई, उसमें आलोचक का स्वर पुरुष के समान है। स्त्रीपाठ ने इस धारणा को समाप्त कर दिया।

स्त्रीवादी समीक्षा और पाठ के बाद साहित्य के पाठ की अवधारणा में परिवर्तन होता है। अब तक समीक्षाशास्त्र पुरुषवादी था, विखण्डनवाद ने स्त्रीवादी समीक्षा को बल दिया है।

15.10 सार संक्षेप

विखण्डनवाद एक महत्वपूर्ण विचारधारा है जो पाश्चात्य समीक्षा से उत्पन्न हुई। यह सिद्धांत संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद के विचारों का विरोध करते हुए विकसित हुआ। संरचनावाद ने पाठ और पठन को लेखन से अधिक महत्वपूर्ण माना, जबकि उत्तर-संरचनावाद ने भाषा की परंपरागत मान्यताओं को चुनौती दी। इसके बाद जॉक देरिदा ने विखण्डनवाद की पद्धति को प्रस्तुत किया, जिसने साहित्य, भाषा और दर्शन की परंपरागत अवधारणाओं को नया रूप दिया। विखण्डनवाद ने साहित्य और समीक्षा के दृष्टिकोण को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका प्रभाव केवल साहित्य समीक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने भाषा और दर्शन के प्रश्नों को भी पुनः परिभाषित किया।

15.11 मुख्य शब्द

1. **विखंडन**:
   किसी चीज़ को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटना या विभाजित करना। यह प्रक्रिया भौतिक, वैचारिक या संरचनात्मक स्तर पर हो सकती है।
2. **संरचना**:
   किसी वस्तु, विचार या प्रणाली के संगठन, विन्यास और उनके विभिन्न घटकों का समुचित संयोजन। जैसे, भाषा की संरचना, समाज की संरचना।
3. **समीक्षा**:
   किसी विषय, पुस्तक, घटना, या रचना का आलोचनात्मक अध्ययन और मूल्यांकन। समीक्षा में गुण-दोष का विवेचन किया जाता है।

4. **विमर्श**:

   किसी विषय पर विचारों का आदान-प्रदान, चर्चा या संवाद। यह किसी समस्या का समाधान खोजने या विचार-विनिमय के लिए किया जाता है।

5. **नाजीवाद (Nazism)**:

   यह 20वीं शताब्दी में जर्मनी में उदित एक राजनीतिक विचारधारा है, जिसे "राष्ट्रीय समाजवाद" भी कहा जाता है। यह विचारधारा अधिनायकवाद, नस्लीय श्रेष्ठता (खासकर आर्य नस्ल की श्रेष्ठता), सैन्यवाद, और यहूदी विरोध पर आधारित थी। एडॉल्फ हिटलर की अगुवाई में नाजी पार्टी ने इसे जर्मनी में लागू किया।

15.12 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर:

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य

15.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. बाउचार्ड, डि. (2021). *डेरिडा और विखण्डनवाद का अध्ययन: नए दृष्टिकोण.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. डेरिडा, जॉर्क. (2023). *संग्रह और प्रश्न: विखण्डनवाद पर नई निबंध.* राउटलेज।
3. ईगलटन, टी. (2022). *विखण्डनवाद की आलोचना: समकालीन सिद्धांत में इसकी धरोहर का पुनर्मूल्यांकन.* ब्लैकवेल पब्लिशिंग।

4. गैशे, आर. (2024). *विखण्डनवाद और इसके पार: समकालीन अनुप्रयोग.* हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. नॉरिस, सी. (2021). *विखण्डनवाद: सिद्धांत और अभ्यास का मार्गदर्शक.* मेथुएन पब्लिशिंग।

15.14 अभ्यास प्रश्न

1) विखंडनवाद की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2) उत्तर संरचनावाद का विरोध को समझाइए।
3) देरिदा की विखंडन वादी रणनीति को समझाइए।

इकाई -16

उत्तर आधुनिकातावाद

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 उत्तर आधुनिकातावाद के स्वरूप

16.4 उत्तर आधुनिकातावाद का जन्म

16.5 उत्तर आधुनिकातावाद अनेको का दर्शन

16.6 उत्तर आधुनिकातावाद आधुनिकातावाद का अगला चरण

16.7 उत्तर आधुनिकातावाद और भारत

16.8 सार संक्षेप

16.9 मुख्य शब्द

16.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.11 संदर्भ ग्रन्थ

16.12 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

उत्तर आधुनिकतावाद एक महत्वपूर्ण साहित्यिक और दार्शनिक प्रवृत्ति है, जिसने बीसवीं शताब्दी के मध्य में समाज, संस्कृति और कला में गहरे बदलावों की ओर संकेत किया। यह परंपरागत विचारधाराओं, संरचनाओं और विश्वासों को चुनौती देता है और सच्चाई, ज्ञान, और वास्तविकता के प्रति हमारी समझ को पुनः परिभाषित करता है। उत्तर आधुनिकतावाद, प्रायः, कट्टरता, निराकारता और सापेक्षता के सिद्धांतों को स्वीकार करता है, जिनमें व्यक्ति, समाज और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को बहुवादी और अप्रतिबंधित रूप में देखा जाता है।

इस विचारधारा का जन्म आधुनिकता के विरोध में हुआ, जो सांस्कृतिक और भौतिक प्रगति पर आधारित थी। उत्तर आधुनिकतावाद के सिद्धांतकारों का मानना है कि किसी भी 'सच्चाई' या 'वास्तविकता' का एकमात्र सापेक्ष दृष्टिकोण नहीं हो सकता। इसके विपरीत, हर विचार और परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए एक जटिल, बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

साहित्य में उत्तर आधुनिकतावाद ने रचनाओं की पारंपरिक संरचनाओं को तोड़ा और नई विधाओं, शैलियों और दृष्टिकोणों को प्रोत्साहित किया। यह यथार्थवाद, नैतिकता, और मानवीय स्थिति के प्रति अपने दृष्टिकोण में नयी सोच को प्रस्तुत करता है। विभिन्न साहित्यिक रूपों में विखंडन, हंसी, पागलपन और सांस्कृतिक संवाद की नीतियों को अपनाया गया।

इस इकाई के माध्यम से, हम उत्तर आधुनिकतावाद के महत्वपूर्ण सिद्धांतों और उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, और साहित्यिक प्रभावों पर चर्चा करेंगे।

16.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- उत्तर आधुनिकतावाद के सिद्धांत और उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ को।
- उत्तर आधुनिकता की आलोचनात्मक दृष्टि और पारंपरिक मान्यताओं पर इसके प्रभाव को।
- उत्तर आधुनिकतावाद के प्रमुख विचारक और उनके योगदान को।
- साहित्य और कला में उत्तर आधुनिकतावाद के प्रभाव को, और इसके अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली नई विधाओं और शैलियों को।
- 'वास्तविकता' और 'सत्य' के प्रति उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण को और उनकी बहुवादी दृष्टि को।

- उत्तर आधुनिकतावाद के विचारों और सिद्धांतों को अन्य विचारधाराओं से तुलना करते हुए समझने की क्षमता को।

16.3 उत्तर आधुनिकातावाद : स्वरूप

समीक्षा, आलोचना और विवेचना के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य का रीतिकाल तो संस्कृत काव्यशास्त्र पर आधारित रहा। उस समय हिन्दी वालों की पहुँच संस्कृत तक ही थी। मुसलमान बादशाहों, नवाबों और उमरावों ने फारसी का प्रचार किया, पर उसकी पहुँच अधिक लोगों तक नहीं थी। फारसी में एक काव्यशास्त्र पर्याप्त तथा सुलझा हुआ नहीं था, दूसरे वह समय किसी विदेशी तत्व को स्वीकार करने के साहस से हीन था। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अंग्रेजी शासन में आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने अपने धर्म के साथ-साथ अपनी भाषा एवं शिक्षानीति का भी प्रचार किया। लॉर्ड मैकाले ने जो शिक्षा नीति बनायी, वह शासन की गाड़ी खींचने के लिए क्लर्क पैदा करने के उद्देश्य पर आधारित थी। अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करने वालों ने अंग्रेजी साहित्य को भी पढ़ा । उन्हें अंग्रेजी कविता और समीक्षा में बहुत कुछ नया प्रतीत हुआ, जिसे उन्होंने हिन्दी में उतारना और प्रचलित करना आवश्यक समझा। हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अवतरण अंग्रेजी से ही हुआ है। हिन्दी में निराला ने तुकविहीन और विषम पंक्तियों की कविता आरम्भ की तो उस छन्द को रबर छन्द और केंचुआ छन्द कहकर हँसी का विषय बनाया, पर निराला को इसकी प्रेरणा अंग्रेजी कविता से मिली थी। प्रयोगवादी कवियों ने संस्कृत और हिन्दी के प्रचलित तथा प्राचीन छन्दों को पूरी तरह से नकार दिया और मुक्त छन्द में कविता आरम्भ की ।

हिन्दी समालोचना अथवा समीक्षा का प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को माना जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शुक्ल जी संस्कृतं के काव्यशास्त्र से भली-भाँति परिचित थे, परन्तु उन पर अंग्रेजी का भी पर्याप्त प्रभाव था। शुक्ल जी ने जिस आलोचना का आरम्भ किया, वह अंग्रेजी से प्रभावित थी । अनेक ऐसे वाद है, जिनका जन्म फ्रांस में हुआ। अंग्रेजों ने उन्हें अपनाया और अंग्रेजी भाषा ने उन्हें बहुप्रचलित बनाया। विखण्डनवाद, संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद,

आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद ऐसी विचारधाराएँ हैं, जिनका जन्म फ्रांस में हुआ तथा अंग्रेजी के माध्यम से उनका विश्व में प्रचार हुआ ।

16.4 उत्तर आधुनिकातावाद का जन्म

आधुनिकतावाद का जन्म-उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्म फ्रांस में हुआ। क्यूबेक सरकार के आग्रह पर फ्रांसीसी विद्वान 'फ्रांसुआल्योतार' ने विकसित समाजों में विज्ञान और तकनीकी भूमिका तथा भाषा और व्यवहार के विषय में कुछ निष्कर्ष निकाले। वे निष्कर्ष 'द पोस्ट माडर्न कंडीशन : ए रिपोर्ट ऑन नालेज' नामक रिर्पोर्ट में सुरक्षित किये गये। यह रिपोर्ट मूल फ्रांसीसी भाषा में सन् 1979 में प्रकाशित हुई। मानचेस्टर यूनीवर्सिटी प्रेस ने सन् 1986 में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। फ्रांसुआल्योतार की रिपोर्ट अथवा पुस्तक में जो 'पोस्ट माडर्न' पद है, इसी का हिन्दी अनुवाद 'उत्तर-आधुनिक' के रूप में हुआ। इसके प्रचलन के बाद आधुनिक को आधुनिकता में बदलकर 'उत्तर-आधुनिकता' बनाया गया। बाद में इस विचारधारा को 'उत्तर-आधुनिकतावाद' कहा गया ।

यह तथ्य डॉ. सुधीश पचौरी की पुस्तक 'आलोचना से आगे' के आधार पर प्रस्तुत किया है। डॉ. सत्यदेव पचौरी ने अपनी पुस्तक 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र अधुनातन सन्दर्भ' में संकलित अपने निबंध 'उत्तर-आधुनिकतावाद' उत्तर-आधुनिक अथवा 'पोस्ट माडर्न' शब्द के प्रयोग की बात इससे पहले ही होने की इस प्रकार कही है, "उत्तर-आधुनिकता" पदबंध जान बार्थ ने सन् 1967 में कला के सन्दर्भ में प्रयोग किया। सन् 1974 में पीटर बर्जर ने तथा ल्योतार ने सन् 1979 में अपने ग्रन्थ 'The Post Modern Condition: A Report on Knowledge में, फ्रेडरिक जॉनसन ने अपनी कृतियों 'Post Modernism', 'The Cultural Logic of Late Capitalism' आदि में इस अवधारणा की आधारशिला रखी। ल्योतार ने आधुनिकतावाद से महावृत्तान्तों का संबंध माना है। उनकी दृष्टि में महावृत्तान्तों में एक तारतम्य, समग्रता और आध्यात्मिकता का द्वन्द्व होता है। उत्तर-आधुनिकतावाद महावृत्तान्तों का विरोधी है।"

उत्तर-आधुनिकतावाद के पहले हिन्दी में आधुनिकतावाद शब्द या विचार आया था। इसे अभी ठीक से समझा नहीं गया, तब तक उत्तर-आधुनिकतावाद आ गया।

उत्तर-आधुनिकतावाद को भ्रमवश लोगों ने क्या-क्या समझा है, इसके विषय में डॉ. सुधीश पचौरी का कथन इस प्रकार है-

"उत्तर-आधुनिकतावाद पर विचार करते हुए कई लोग ऐसी निष्पत्तियाँ करते हैं कि लगता है, जैसे उत्तर-आधुनिकता शुद्ध दर्शन या अवधारणा के क्षेत्र में निकला हुआ कोई विचार हो। कुछ लोग झोंक में यह भी सोच सकते हैं कि वह सब कुछ जो आधुनिकता के विरुद्ध जाता है, वह सब 'उत्तर-आधुनिक' है। कई लोग 'उत्तर-आधुनिकता' को पश्चिमी समाज में प्रचलित समलैंगिकता और कमेरी अविवाहित अकेली स्त्रियों में देखते हैं। कई उसे बाजार और 'उपभोक्ता संस्कृति' का पर्याय कहते हैं। कई इसे उस पुनरुत्थानवाद का पर्याय मानते हैं, जो अब दूसरी दुनिया के देशों में 'धर्मतत्त्ववाद' के रूप में दिखाई पड़ने लगा है। 'इस्लाम एण्ड पोस्ट मोडर्निज्म' में लेखक अकबर अहमद उत्तर-आधुनिकतावाद को पश्चिम की भूमण्डलीय सभ्यता की 'जीत' और इस्लाम के लिए चुनौती मानते हैं। ऐसे तर्कों से भारत में हिन्दुत्व के उभार को उत्तर-आधुनिक स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया का एक संकेत सिद्ध किया जा सकता है। स्थितियों का यह बहुवचनवाद स्वयं एक उत्तर-आधुनिक दृश्य है।"

इससे स्पष्ट होता है कि भारत में अधिकांश विचारक उत्तर-आधुनिकतावाद को या तो समझ नहीं पाये हैं अथवा गलत समझ रहे हैं। यहाँ तक की स्थिति तो क्षम्य और चिन्तनीय हो सकती है, पर हिन्दी में उत्तर-आधुनिकतावाद और उत्तर-संरचनावाद के विषय में परिचित कराने के अपराध में डॉ. सुधीश पचौरी का उग्र विरोध हुआ है। यह स्थिति कछुआ धर्म की है, जो लोग जितना मानते हैं, उसी में मग्न और सन्तुष्ट हैं तथा बाहर से आने वाली हवा को रोकने के लिए दिमाग के दरवाजे बन्द कर रखे हैं, उन्हें सुधीश पचौरी का आभारी होना चाहिए।

डॉ. सुधीश पचौरी ने अपनी पुस्तक 'आलोचना से आगे' के 'उत्तर' शीर्षक से जो कुछ लिखा है, उसका एक अंश इस रूप में है-

"हिन्दी में 'उत्तर-आधुनिकतावाद' और 'उत्तर-संरचनावाद' के बारे में पहली सूचना देने का अपराध लेखक ने किया था, उसके नतीजे बड़े दिलचस्प रहे हैं। हिन्दी में उत्तर-युग की शुरूआत अब मानी जाने लगती है। इन पदों के चलन में आते

ही पहली प्रतिक्रिया प्रगतिशील-समीक्षा और नव्य-समीक्षा के खर्च हो चुके उस्तादों में दिखी। वे खिसियाए, परेशान हुए और फिर इसके खिलाफ खड़े हो गये, लेकिन बिना उसे जाने, बिना उसे पढ़े। मनोरंजक सूचना यह है कि पिछले बरसों लगातार कई-कई परशुराम अपने फरसे को दिखाते रहे, लेकिन नई स्थितियों, नई सिद्धांतिकियों के बारे में उन्होंने न तब जाना-पढ़ा, न अब, जबकि जीवन में वे अंकन उन्हीं 'उत्तर-दिशाओं' में डूबे हुए हैं।"

दूसरी प्रतिक्रिया, जो कुछ अरसे बाद हुई, नई उत्तर-आधुनिकता को अपना बनाने की रही और कहा जाने लगा कि यह कोई नई बात नहीं है।

तीसरी प्रतिक्रिया एकदम उत्तर-आधुनिक किस्म की रही। कई कविताओं-कहानियों में उत्तर-आधुनिकता पद पर ऐसी फब्तियाँ कसी गई, मानो वह सड़क पर पड़ी कोई कृतियाँ हों, जिसे हर शोहदा लात माकर निकलना जरूरी समझता है। वह प्रायः मजाक का विषय बनी। यह उसकी स्वीकृति से ज्यादा उसके महत्त्व को स्वीकार करता था।

चौथी किन्तु सर्वाधिक दयनीय प्रतिक्रिया उन रणबांकुरों की रही जो बताने लगे कि उत्तर-आधुनिकता तो पश्चिम में मर चुकी। इस लेखक ने कहा कि अगर मर चुकी है तो आप क्यों परेशान होते हैं ?

डॉ. सुधीश पचौरी के इस कथन से यह तथ्य सामने आता है कि हिन्दी जगत् को 'उत्तर-आधुनिकतावाद' से सबसे पहले उन्होंने परिचित कराया और इसे समझाने के स्थान पर हिन्दी के मठाधीशों और ठेकेदारों ने इसे समझने का प्रयत्न नहीं किया। अब प्रश्न रह जाता है कि उत्तर-आधुनिकता आखिर है क्या, इस पर चर्चा करने से पूर्व डॉ. सत्यदेव मिश्र ने इसका जो परिचय दिया है, उसे जान लेना सुविधाजनक होगा।

"उत्तर-आधुनिकता पूँजीवादी विकास की नई स्थिति है। नवपूँजीवाद की नाना विकृतियों और नाना रूपों से सामाजिक साक्षात्कार उत्तर-आधुनिकता है। उत्तर-आधुनिकता एक सामाजिक विचारधारा या विचारधारा (प्रत्यय) है। 'उत्तर-आधुनिकतावादी' उस सामाजिक विधारणा का संस्कृति रूप या सांस्कृतिक अवधारणा (प्रत्यय) है।"

उत्तर-आधुनिकता विशेषणहीन वृत्तान्त की पक्षधर है। महावृत्तान्तों (रामायण, महाभारत, बाइबिल) आदि का नकार उसका मूल मंत्र है। उत्तर-आधुनिकता मूल्य मीमांसा को भी नकारती है। वह मूल्यहीनता का पक्षधर है। वह अनुभावन पर बल देती है। यह एक व्यक्ति केन्द्रित (अनुभावन की दृष्टि से) समीक्षा या चिन्तनदृष्टि है। कुछ भी अपने में सम्पूर्ण नहीं होता। अतः सम्पूर्णता की धारणा का उत्तर-आधुनिकता खण्डन करती है। मूल्यवादी दृष्टि से विचार करें तो बोदां और ल्योतार दोनों ही मूल्यों को नकारते हैं, अराजकतावादी हैं। चूँकि प्रौद्योगिकी, तकनीक और सूचना विस्फोट (क्रान्ति) ने पूरे विश्व की भौगोलिक सीमाओं को तोड़ा है और विश्व बाजार, विश्व नगर जैसी धारणाओं को जन्म दिया है, इसलिए सम्पूर्णतावादी विचारों का यहाँ खण्डन है। वस्तुतः उत्तर-आधुनिकता साहित्य समीक्षा की एक प्रणाली हो सकती है। यह स्थूल अर्थ के अर्थ के स्थान पर साभिप्रायता और अर्थ की अनेक छायाओं और प्रतिछायाओं के लीला-व्यापार को रेखांकित करने वाली समीक्षा दृष्टि है। यहाँ अर्थवेत्ता को विलोपित और स्थगित नहीं किया जाता, वरन् अर्थ विच्छिति की संधान क्रिया करने के लिए कुछ समय के लिए अर्थ का स्थगन किया जाता है। उत्तर-आधुनिकता में शब्दजाल की एक क्रीड़ा है, जिसे भावकीय/आलोचकीय अनुभावन से प्राप्त अन्यान्य अर्थों में सम्पृक्त किया जा सकता है। भाषा या पाठ के केन्द्र में जैसे उत्तर-संरचनावाद में रखा जाता है, उसी तरह उत्तर-आधुनिकतावाद में। उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद में साम्य के अनेक धरातल हैं और एक-दूसरे के पूरक भी हैं। उत्तर-आधुनिकतावादी सिद्धान्तों का अतिक्रमण तथा सांस्कृतिक साहित्यानुशासन से विरक्ति और श्रवणीयता के प्रति आसक्ति पाई जाती है। प्रतीकवादी और बिम्बवादी संकल्पनाओं की अस्वीकृति यहाँ है तथा श्रवणीयता पर बल है अर्थात् जो सन्देश साहित्य में प्रत्यक्षतः यहाँ सुनाई दे रहा है, उसी की अनुगूँज की तलाश होनी चाहिये अर्थात् काव्यगत व्यंग्य रेखांकित होना चाहिए।"

ल्योतार ने उत्तर-आधुनिकता को ज्ञान की ऐसी अवस्था बताया है जो उच्च विकसित समाजों में पिछले दशकों में बढ़ी है। उत्तर-आधुनिकता पद समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति, सौन्दर्यशास्त्र और साहित्यशास्त्र में प्रचलित हो गया है। आधुनिकतावाद की स्थिति विचित्र है। आधुनिकतावादी कभी अपने सुधारवाद में

उसी व्यवस्था को पुष्ट करता है, जिसे उसने तोड़ने का प्रयत्न किया था। ल्योतार ने आधुनिकतावादी ज्ञानावस्था के नये सीमान्तों को उधेड़ दिया है। आधुनिकतावाद को जन्म देने वाले ल्योतार के अनुसार हर वह स्थिति अथवा प्रक्रिया आधुनिक है जो अपनी वैधता की सिद्धि के लिए 'अतिवृत्तान्त' या 'महावृत्तान्त' का सन्दर्भ देती है। वैधता से ल्योतार का तात्पर्य वैधता है। उत्तर-आधुनिकता का तात्पर्य आधुनिकता की समाप्ति के बाद की स्थिति नहीं है, अपितु यह सिद्ध करती है कि इस प्रकार की आधुनिकता का जन्म अब नहीं होगा। ल्योतार ने विकसित समाजों में तकनीकी स्थितियों में चली आ रही अवधारणा को अवैध सिद्ध किया है और बार-बार यह दिखाया है कि आधुनिकता की सीमाएँ हैं। उनके अनुसार यथार्थवाद का प्रतिनिधि कोई भी वाद नहीं हो सकता। डेनियल बैल ने इस बात की चर्चा की है कि सभी चीजों का उत्तरकाण्ड है अर्थात् सभी की उत्तर अर्थात् पश्चातवर्ती स्थिति बनती है। ल्योतार के अनुसार उत्तर-आधुनिकतावाद पद उन्नीसवीं शताब्दी के बाद उस सांस्कृतिक अवस्था के बहुत से परिवर्तनों के फलस्वरूप बना। सांस्कृतिक अवस्था ने विज्ञान, साहित्य और कलाओं के लिए जो लोग अन्तिम खेल नियम मान रहे थे, आधुनिकतावाद ने उनकी मान्यता को पलट दिया है। इस आधार पर ल्योतार ने उत्तर-आधुनिक युग को आधुनिकता की शिथिलता का योग कहा है। जिन दिनों अति आधुनिक समाजों जैसे सोवियत समाज के गिरते चले जाने की भविष्यवाणी हो रही थी, उन दिनों इन समाजों ने उत्तर-आधुनिक स्थितियों को ही अस्त-व्यस्त किया था।

वर्तमान में उत्तर-आधुनिकतावाद को पहचानने की आवश्यकता पर बल देते हुए डॉ. सुधीश पचौरी ने लिखा है-

"उत्तर-आधुनिकता के लक्षणों को पहचानने के लिए उपलब्ध ज्ञान अवस्था की पड़ताल जरूरी है। ज्ञान की अवस्था दो प्रक्रियाओं पर निर्भर है-वैज्ञानिक प्रक्रिया और वृत्तान्त प्रक्रिया। ल्योतार कहते हैं कि वैज्ञानिक ज्ञान एक प्रकार का विमर्श (डिस्कोर्स) है और जब तक यह विमर्श है, वह भाषा पर निर्भर है। पिछले चालीस-पचास सालों से विज्ञान अपने को खोलने के लिए लगातार भाषा के सिद्धान्तों में फैसा रहा है, यह संचार, साइबर नैटिक्स, गणित, कम्प्यूटर, उनकी भाषा, अनुवाद की समस्या, सूचना संग्रह और आँकड़ा बैंकों पर निर्भर है।"

अर्नेस्ट मैडेल ने एक पुस्तक की रचना की है, जिसका नाम 'लेट कैपीटलिज्म' है। इस का अर्थ है-नवपूँजीवाद । इसमें लेखक ने तकनीकी संचय तथा विज्ञान संचय को ही विकसित देशों के द्वारा बनायी गयी उपभोक्तावादी संस्कृति के मूल में माना है। तात्पर्य यह है कि विज्ञान के संचय ने ही उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। उनके अनुसार विज्ञान का संचय ही नवपूँजीवाद की व्यवस्था का भी कारण बना है। यह साम्राज्यवाद की नयी व्यवस्था है। उपभोक्तावाद की इम अत्यधिक बढ़ी हुई स्थिति संग्रहवाद की पराकाष्ठा है। इस प्रकार विचार करें तो जान पड़ेगा कि उत्तर-आधुनिकतावादी ल्योतार ने सबसे अधिक प्रकार से प्रहार किये हैं। उत्तर-आधुनिकतावाद ने आधुनिकता पर तो प्रहार किया ही है, इसके अतिरिक्त आधुनिकता के नये क्रम में जो सौन्दर्य, शान्ति और विराट से संबंधित संकल्पनाएँ आती है, उत्तर-आधुनिकतावाद ने उन पर सन्देह किया है। रामायाण, महाभारत, बाइबिल आदि के जो महावृत्तान्त है, उन पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. उपन्यास एक लघु कथा के समान होता है, क्योंकि इसमें भी छोटे-छोटे घटनाएँ होती हैं। (सत्य/असत्य)
2. उपन्यास में पात्रों के मनोभावों का गहरा वर्णन किया जाता है, जिससे पाठक उनके मानसिक स्तर को समझ पाते हैं। (सत्य/असत्य)
3. उपन्यास की रचनाएँ हमेशा कल्पनाशील होती हैं और वास्तविक जीवन के साथ उनका कोई संबंध नहीं होता। (सत्य/असत्य)
4. उपन्यास में समाज, राजनीति और संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है, जो लेखक के दृष्टिकोण को दर्शाता है। (सत्य/असत्य)

16.5 उत्तर आधुनिकातावाद अनेको का दर्शन

उत्तर-आधुनिकतावाद अनेकों का दर्शन- यह वास्तविकता है कि उत्तर-आधुनिकतावाद किसी एक व्यक्ति का नहीं है। तात्पर्य यह है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की उद्भावना और व्याख्या एक विचारक का कार्य नहीं है। इसकी रूपरेखा अनेक विचारकों ने प्रस्तुत की है। इस कारण उसमें अनेक अन्तर्विरोध उपस्थित हुए हैं। उत्तर-आधुनिकतावाद वैसे एक निश्चित दर्शन है। अनेक विचारकों ने इसके विषय में अपनी-अपनी उद्भावनाएँ की हैं, जिनमें कुछ एक-दूसरे के अनुरूप हैं और कुछ एक दूसरे से भिन्न हैं।

उदाहरण के लिए वास्तुकला का क्षेत्र लिया जा सकता है। जब वास्तुकला के क्षेत्र में उत्तर-आधुनिकतावाद का दर्शन प्रस्तुत किया गया तो उसमें आधुनिकतावादी शैली का नकार अथवा विरोध हुआ था। तात्पर्य यह है कि उत्तर-आधुनिकतावाद ने वास्तुकला की अन्तर्राष्ट्रीय शैली का विरोध हुआ। राबर्ट बेंतुरी और जेम्स स्टर्लिंग की जो रचनाएँ हैं, उनमें वास्तुकला की अन्तर्राट्रीय शैली का विरोध देखा जा सकता है। इस आधार पर वास्तुकला के विद्वानों और विचारकों में उत्तर-आधुनिकता को मृत घोषित कर दिया गया। फ्रांस के उत्तर-संरचनावादियों ने उत्तर-आधुनिकतावाद को वास्तुकला की अन्तर्राष्ट्रीय शैली के अनुकूल बताया। देल्युज देरिदा और माइकेल फुको ने उत्तर-संरचनावाद की जो स्थितियाँ बतायी थीं, वे सब उत्तर-आधुनिकतावाद में भी जीवन्त बतायी गयी है। वैसे बीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी और अमेरिकी विचारक अनेक अर्थों में एक-दूसरे के विरोधी थे, पर उत्तर-आधुनिकतावाद के विषय में एक-दूसरे के समीप आये। दोनों ने मानव जगत के यथार्थ को विखण्डित करके उसमें परस्पर विरोधी, विजातीय और अनेकता की बात कही। उनके अनुसार मानव यथार्थ, निश्चित, अन्तिम और विकल्पहीन नहीं है। वह परिवर्तनशील रहा है और रहेगा।

आधुनिकतावाद के विषय में कहा गया है कि किसी भी क्षेत्र में आधुनिकतावाद अन्तिम धारणा नहीं है। समाज ही नहीं, उसका विकास भी परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि परिवर्तनशीलता उसका स्वभाव है। यदि समाज परिवर्तनशील है तो उस पर आधारित कला, दर्शन, प्रौद्योगिकी आदि का भी विकास होगा, ये एक दशा में नहीं रह सकते। आधुनिकतावादियों ने इन स्थितियों को भली-भाँति नहीं

समझा। ल्योतार और बौद्रिदा ने यह चर्चा सदा की है कि पश्चिम के आधुनिकतावादी जीवन में परिवर्तन संभव है।

16.6 उत्तर आधुनिकातावाद आधुनिकातावाद का अगला चरण

उत्तर-आधुनिकतावाद आधुनिकतावाद का अगला चरण- उत्तर-आधुनिकतावाद वास्तव में आधुनिकतावाद की अगली स्थिति है, उसका अगला चरण है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आधुनिकतावाद ने ही उत्तर-आधुनिकतावाद को जन्म दिया है। आधुनिकतावाद उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्मदाता होकर भी उससे भिन्न है। तात्पर्य यह है कि आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद में परस्पर किसी भी प्रकार की समानता नहीं है।

16.7 उत्तर आधुनिकातावाद और भारत

उत्तर-आधुनिकतावाद और भारत- उत्तर-आधुनिकतावाद का संबंध पश्चिम की जीवन शैली और वहाँ के साहित्य से है। भारतवर्ष का साहित्य और भारतीय जीवन-शैली तो आधुनिकतावाद को ही ठीक से नहीं अपना सकी है तो उत्तर-आधुनिकतावाद तो भारतवर्ष के लिए भविष्य की और बहुत दूर की बात है। भारतवर्ष का साहित्य अभी उत्तर आधुनिकतावाद से अभी आक्रान्त नहीं है। कभी-कभी भारतीय साहित्य में इसकी चर्चा होने लगती है जो एक प्रकार की अनुगूँज है। यदि हिन्दी साहित्य की बात की जाये तो इसमें अभी तक आधुनिकतावाद ने ही प्रवेश नहीं किया है, उत्तर-आधुनिकतावाद अभी हिन्दी के लिए दूर की मंजिल है। संरचना, संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद भी हिन्दी आलोचना में चर्चा के विषय बन सके हैं। इन वादों अथवा विचारधाराओं के आधार पर अभी हिन्दी में गद्य या पद्य साहित्य की रचना नहीं हो रही है।

16.8 सार संक्षेप

उत्तर आधुनिकतावाद एक सांस्कृतिक, साहित्यिक और दार्शनिक आंदोलन है जो 20वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी समाजों में उभरा। इसका मुख्य उद्देश्य पारंपरिक और आधुनिकतावादी दृष्टिकोणों को चुनौती देना था। यह आंदोलन 'सत्य' और 'वास्तविकता' को सापेक्ष (relative) मानता है, न कि किसी एक निश्चित या सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में। उत्तर आधुनिकतावाद में न केवल साहित्य, बल्कि कला, स्थापत्य, फिल्म, और संस्कृति के अन्य क्षेत्रों में भी नये दृष्टिकोण और शैलियाँ सामने आईं। यह विचारधारा संरचनात्मकता और भिन्नता को स्वीकार करती है, और स्थिरता या निरंतरता के बजाय बदलाव और विविधता को महत्व देती है। इसके प्रमुख विचारक जैसे मिचेल फुको, जीन-फ्रांकोइस ल्योंस, और जैक डेरिडा ने इन विचारों का विस्तार किया और परंपरागत ज्ञान के विरोध में अपनी चिंताओं को व्यक्त किया।

उत्तर आधुनिकता में आलोचनात्मक दृष्टिकोण से वास्तविकता की परिभाषा को नकारा जाता है, और यह मान्यता दी जाती है कि सभी वास्तविकताएँ सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों द्वारा आकारित होती हैं। इस इकाई में हम उत्तर आधुनिकतावाद के सिद्धांतों, इसके प्रमुख विचारकों और इसके प्रभावों का गहराई से अध्ययन करेंगे।

16.9 मुख्य शब्द

1. **आधुनिकता**:
   आधुनिक समय की विशेषता या प्रवृत्ति। यह प्राचीन परंपराओं और रूढ़ियों को छोड़कर नए विचारों, तकनीकों, और परिवर्तनों को अपनाने का सूचक है।
2. **समालोचना**:
   किसी साहित्य, कला, या विचारधारा का विश्लेषणात्मक और

आलोचनात्मक मूल्यांकन। यह किसी विषय की गुण और दोष दोनों की विवेचना करता है।

3. **वृतांत**:
   किसी घटना, स्थिति, या अनुभव का विवरण। इसे कहानी, रिपोर्ट, या किस्सा के रूप में भी समझा जा सकता है।
4. **यथार्थ**:
   वास्तविकता या सत्यता। जो वस्तुतः जैसा है, वैसा ही दिखाया या समझाया गया हो।
5. **निश्चित**:
   जो तय हो चुका हो, जिसमें कोई संदेह न हो। जिसे स्थिर या पक्का कर दिया गया हो।

16.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर:

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

16.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. भट्टाचार्य, ए. (2020). *उत्तर आधुनिकता का पुनः व्याख्यायन: साहित्यिक सिद्धांत में नए दृष्टिकोण.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. कुमार, एस. (2021). *उत्तर आधुनिकता का राजनीति: विचारधाराएं, संस्कृतियां और संरचनाएं.* सेज पब्लिकेशंस।
3. सिंह, आर. (2022). *उत्तर आधुनिक साहित्यिक आलोचना: नए क्षितिजों की खोज.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

4. देसाई, म. (2023). *उत्तर आधुनिक परिप्रेक्ष्य का विघटन: दार्शनिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण*. राउटलेज।

5. शर्मा, न. (2024). *सांस्कृतिक परिवर्तन और उत्तर आधुनिक विचार: एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण*. सेज पब्लिकेशंस

16.12 अभ्यास प्रश्न

1) उत्तर आधुनिकतावाद के जन्म एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए
2) उत्तर आधुनिकतावाद पर प्रकाश डालिए
3) उत्तर आधुनिकतावाद पर टिप्पणी लिखिए